









Tropical Forest Research Institute

(Indian Council of Forestry Research and Education) Ministry of Environment, Forests and Climate Change (MoEFCC) PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur - 482021, India

Vol. 8, No. 4,

Issue: April 2021

Van Sangyan

Editorial Board

Patron: Dr. G. Rajeshwar Rao, ARS

Co Patron: Dr. Maitreyee Kundu

Chief Editor: Dr. Naseer Mohammad

Editor & Coordinator: Shri M. Rajkumar

Assistant Editor: Dr. Rajesh Kumar Mishra

Note to Authors:

We welcome the readers of Van Sangyan to write to us about their views and issues in forestry. Those who wish to share their knowledge and experiences can send them:

by e-mail to vansangyan_tfri@icfre.org

or, through post to The Editor, Van Sangyan,

Tropical Forest Research Institute,

PO-RFRC, Mandla Road,

Jabalpur (M.P.) - 482021.

The articles can be in English, Hindi, Marathi, Chhattisgarhi and Oriya, and should contain the writers name, designation and full postal address, including e-mail id and contact number. TFRI, Jabalpur houses experts from all fields of forestry who would be happy to answer reader's queries on various scientific issues. Your queries may be sent to The Editor, and the

expert's reply to the same will be published in the next issue of Van Sangyan.

Cover Photo: Panoramic view of Achanakmar-Amarkantak Biosphere Reserve

Photo credit: Dr. N. Roychoudhury and Dr. Rajesh Kumar Mishra, TFRI, Jabalpur (M.P.)

From the Editor's desk

Aonlais in cultivation in India since time immemorial; It is an important minor fruit crop having commercial significance. It belongs to the family Euphorbiaceae. The crop is quite hardy, prolific bearer and highly remunerative even without much: care. The fruit is capsular (drupaceous) with a flashy exocarp. Aonla is said to be indigenous to tropical Soutti-Eastern Asia. It is also reported to be the native of India, Ceylon, Jalaysia and China. The data on area under aonla cultivation are not available. Although, it. is found growing in different states throughout tropical India even up to elevation of 1500 m in South India. It thrives well through tropical India, however, commercial orcharding can be seen in U.P; and-Gujrat The main aonla growing areas are the eastern;:-districts of U.P; like Faizabadr Pratagarh, Allahabad and Yaranasi.

Aonla is primarily a sub-tropical plant but its cultivation is being successfully carried out in tropical climate too. It can tolerate mild frost of Northern India, but can be damaged by severe frost. Grafted plants are more prone to the frost injury in comparison to seedlings. Trees can tolerate hot and dry winds and drought conditions for long. Sufficient humidity is required for the growth of fruit during July-August. Aonla can be grown on a variety of soils, ranging from foot hills to sandy loams and clay loams. It can be planted on alkaline soils (6.5-9.5pH) too. On heavy soils trees make good growth and bear profusely. Under North Indian conditions, aonla matures in winter December-January. Fully mature fruits should be harvested by avoiding any injury to be the fruits. No shaking of trees for fruit harvest. Shaking spoils the fruits at the ground and also many branches get broken. A mature tree can yield over one quintal of fruit per tree. At present marketing is done usually in gunny bags, which is not desirable. The harvested fruits should be placed in shade. Ladders should be used to harvest the fruits. The fruits should be packed properly in wooden boxes. Boxes should be properly nailed and transported to the desired markets.

In line with the above this issue of Van Sangyan contains an article on आँबला की खेती एवं उपयोग. There are also useful articles viz.. ऊषर सुधार किसान उद्धार, वन एवं उनका पारम्परिक महत्व, An overview of organic farming situation in India, Acid rain- A global environmental issue,, Australian bug, Icerya purchasi and its control measures, वीरांगना दुर्गावती वन्य जीव अभ्यारण्यः वानस्पतिक विविधता का केन्द्र

I hope that readers would find maximum information in this issue relevant and valuable to the sustainable management of forests.

Van Sangyan welcomes articles, views and queries on various such issues in the field of forest science.

Looking forward to meet you all through forthcoming issues

Dr. Naseer Mohammad

Chief Editor

Disclaimer - Van Sangyan

Statement of Responsibility

Neither *Van Sangyan* (VS) nor its editors, publishers, owners or anyone else involved in creating, producing or delivering *Van Sangyan* (VS) or the materials contained therein, assumes any liability or responsibility for the accuracy, completeness, or usefulness of any information provided in *Van Sangyan* (VS), nor shall they be liable for any direct, indirect, incidental, special, consequential or punitive damages arising out of the use of *Van Sangyan* (VS) or its contents. While the advice and information in this e-magazine are believed to be true and accurate on the date of its publication, neither the editors, publisher, owners nor the authors can accept any legal responsibility for any errors or omissions that may be made or for the results obtained from the use of such material. The editors, publisher or owners, make no warranty, express or implied, with respect to the material contained herein.

Opinions, discussions, views and recommendations are solely those of the authors and not of *Van Sangyan* (VS) or its publishers. *Van Sangyan* and its editors, publishers or owners make no representations or warranties with respect to the information offered or provided within or through the *Van Sangyan*. *Van Sangyan* and its publishers will not be liable for any direct, indirect, consequential, special, exemplary, or other damages arising there from.

Van Sangyan (VS) reserves the right, at its sole discretion, to change the terms and conditions from time to time and your access of Van Sangyan (VS) or its website will be deemed to be your acceptance of an agreement to any changed terms and conditions.

आँवला की खेती एवं उपयोग

बृजेश कुमार मीणा एवं विजय उपाध्याय

कृषि और पशु चिकित्सा विज्ञान संकाय मेवाड़ यूनिवर्सिटी, चित्तौरगढ़-राजस्थान-312901 Email: brijeshkumarmeena1985@gmail.com



आँवला युफोरबिएसी परिवार का पौधा है। आँवले का फल कैप्सूल अंडाकार गोल से लेकर चपटे गोल आकृति के, रंग सफेद हरा छिलका चिकना से खुरदुरा, अर्धपारदर्शी, 6-8 खण्डों में विभाजित एवं फलों की सतह चिकनी या हल्की उठी हुई होती है। फल की गुठली कड़ी, गोल से लेकर त्रिकोणीय आकार की होती है। बीज की बाहरी भित्ति कड़ी, बीज 6-8 हल्के भूरे रंग से लेकर गहरे भूरे रंग के होते है। आंवला विटामिन सी से भरभूर प्रकृति का ऐसा स्रोत है। जो की हर तरह के रोगों को हमसे दूर करने के लिए एक बहुत ही गुणकारी औषधि की तरह है इसके फलो को ताजा एवं सुखाकर दोनों तरह से प्रयोग में लाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

आंवला का पौधा जलवायु एवं भूमि दोनों के प्रति काफी सहिष्णु होता है। इसके लिए शुष्क जलवायु उत्तम मानी जाती है। फिर भी उचित जल निकास के साथ बलुई दोमट से मटियार दोमट भूमि जो कैल्शियम युक्त हो सर्वोतम रहती है। भारत में इसकी खेती समुद्र तटीय क्षेत्रों से 1800 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। जाड़े में आँवले के नये बगीचों में पाले का हानिकारक प्रभाव पड़ता है परन्तु एक पूर्ण विकसित आँवले का वृक्ष 0 - 46 सेंटीग्रेट तापमान तक सहन करने की क्षमता रखता है। गर्म वातावरण, पुष्प कलिकाओं के निकलने हेतु सहायक होता है जबिक जुलाई-अगस्त माह में अधिक आर्दता का वातावरण सुसुप्त छोटे फलों की वृद्धि हेतु सहायक होता है।

Issue: April 2021

आंवला की किस्मे

चिकया, बनारसी फ्रांसिस, कृष्ण, कंचन नरेंद्र आंवला - 5, 4, 7 गंगा भवानीसाग

खाद और उर्वरक

आवंला की फसल में खाद और उर्वरक की बात की जाये तो ये हर वर्ष 100 ग्राम नाइट्रोजन 60 ग्राम फास्फोरस 75 ग्राम पोटाश प्रति पेड़ के हिसाब से देना होता है जो की ये मात्रा हर वर्ष इसी मात्रा में बढ़ा दी जाती है इसके साथ ही ऊसर भूमि में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते है अत 2-3 वर्ष उर्वरको के साथ 250 से 500 ग्राम जिंक सल्फेट फलत वाले पौधो में देना चाहिए।

आंवला के पौधो की सिचाई

आंवला में सिचाई गर्मियों में जहा 2 बार की जाती है वही सर्दियों में ये सिचाई केवल एक बार ही करनी होती है इसके अलावा बारिश खत्म होने के बाद पौधो के आसपास बाडा बना दिया जाता है ताकि मिट्टी में नमी बनी रहे।

आँवले का जैविक उत्पादन

आँवले के जैविक उत्पादन की दिशा में किये गये प्रारम्भिक कार्य में काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। कई प्रयोग करने के पश्चात ऐसा पाया गया है कि एक छिड़काव बी.डी. 500 का तथा 1.0 कि.ग्रा. केंचुएँ की खाद एवं 100 ग्रा. काऊ पैट पिट प्रति पौधों के थालों में एवं केले की पत्ती एवं धान के पुवाल से पलवार करने से काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। बी.डी. पेस्टीसाइड (बी.डी. 501) के द्वारा कीड़ों एवं बीमारियों को भी सफलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है।

पुष्पन एवं फल वृद्धि

आँवले में फूल सीमित शाखाओं पर जो कि असीमित शाखाओं की गाँठ से निकलती हैं, बसंत ऋतु में आते हैं। फूलों का खिलना मार्च के अंतिम सप्ताह से शुरू होता है तथा तीन सप्ताह तक चलता है। बीजू किस्मों में पुष्पन की क्रिया पहले प्रारम्भ होती है, जबकि व्यवसायिक किस्मों में पुष्पन बाद में होता हैं। दक्षिण भारत में पुष्पन साल में दो बार होता है। पहली बार फरवरी-मार्च में और दूसरी बार जून-जुलाई में पहली बार वाले पुष्प अच्छी फलत देते हैं परन्तु दूसरी बार के पुष्प कम फलत देते हैं। फलों में सर्वाधिक वृद्धि सितम्बर माह में होती है तथा उत्तर भारतीय दशाओं में फल नवम्बर तक परिपक्क हो जाते हैं।

रोग नियंत्रण

आवंला में उतक क्षय रोग तथा रस्ट बीमारी लगती है। इनके नियंत्रण के लिए 0.4 - 0.5 : बोरेक्स का छिडकाव प्रथम अप्रैल में द्वितीय जुलाई एवं तृतीय सितम्बर में उतक क्षय हेतु करना चाहिए तथा रस्ट नियंत्रण हेतु 0.2: डाईथेन जेड 78 या मैनकोजेब का छिडकाव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

कीट नियंत्रण

आंवला में छाल खाने वाले पत्ती खाने वाले तथा शूट गाल मेकर कीट प्रमुख है। इनके नियंत्रण हेतु छाल वाले कीट के लिए मेटासिसटाक्स या डाईमिथोएट तथा 10 भाग मिटटी का तेल मिलकर रुई भोगोकर तना के छिद्रों में डालकर चिकनी मिटटी से बन्द कर देना चाहिए। पत्ती कीट हेतु 0.5 मिली लीटर फस्फोमिडान प्रति लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए। तथा शूटगाल मेकर हेतु 1.25 मिली. मोनोक्रोटोफास या 0.6 मिली. फस्फोमिडान प्रति लीटर पानी मिलकर छिडकाव करना चाहिए।

परिपक्वता, तुड़ाई, पैकिंग एवं भंडारण परिपक्वता

आँवला की व्यावसायिक किस्मों में परिपक्वता सूचकांक का निर्धारण फल लगने के उपरांत अविध, टी. एस. एस. एसिड अनुपात, आपेक्षित घनत्व आदि के अनुसार किया जाता है। बनारसी एवं कृष्णा किस्मों में परिपक्वता फल लगने के 17-18 सप्ताह बाद आती है, जबिक कंचन और फ्रांसिस में 20 सप्ताह का समय लगता है। चकैइया किस्म, फल लगने के 23 सप्ताह बाद परिपक्व होते हैं। परिपक्वता के समय आपेक्षित घनत्व सभी किस्मों में 1.0 से अधिक पाया जाता है। आँवले में परिपक्वता निर्धारण का सबसे अच्छा तरीका फलों के रंग में परिवर्तन (हरे से चमकदार सफेद हरा या पीला हरा) एवं बीज के रंग में परिवर्तन (हल्के पीले सफेद से भूरे रंग में) को देखकर किया जा सकता है।

तुड़ाई

आँवले के फलों की तुड़ाई हाथ से करते हैं परन्तु यह क्रिया बड़े वृक्षों में सम्भव न होने के कारण, बांस से बनी सीढ़ियों पर चढ़ कर तुड़ाई की जाती है।

फलत

आँवले का कलमी पौधा रोपण से तीसरे साल तथा बीजू पौधा 6-8 साल बाद फलत देना प्रारम्भ कर देता है। कलमी पौधा 10-12 साल बाद पूर्ण फलत देने लगता है तथा अच्छे प्रकार से रख-रखाव के द्वारा 60-75 साल तक फलत देता रहता है।

श्रेणीकरण

आँवले के फलों को तीन श्रेणियों में उनके आकार, भार, रंग एवं पकने के समय के आधार पर बांटा जा सकता है। बड़े आकार के फल (व्यास 4 सें.मी. से अधिक) को मुरब्बा बनाने हेतु प्रयोग किया जाता है। मध्यम आकार के फलों को अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाने में एवं छोटे आकार के फलों को औषधीय उत्पाद जैसे च्यवनप्राश, त्रिफला इत्यादि बनाने में प्रयोग किया जाता है।

पेटीबंदी

आँवले के फलों का अच्छी तरह से सम्भलाव एवं पेटीबंदी न करने से लगभग 20 प्रतिशत तक का नुकसान होता है। इसलिए आँवले की पेटीबंदी करते समय अत्यधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है। जूट की बोरियों एवं अरहर पौधों के तने की टोकरियाँ प्राय रूप से आँवले की पेटीबंदी में प्रयुक्त की जाती हैं।

भंडारण

आँवले के भंडारण का मुख्य उद्देश्य संसाधन हेतु उसकी उपलब्धता को बढ़ाना है। किस्मों के अनुसार परिपक्व फलों को 6 से 9 दिनों तक कम ऊर्जा वाले शीतकक्षों में रख कर बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आँवले के फलों को शीत तापक्रम (5-70 सेंटीग्रेट) पर दो माह तक रखा जा सकता है। फलों को 15 प्रतिशत नमक के घोल में रख कर 75 दिनों तक सामान्य तापक्रम पर भंडारित किया जा सकता है।

प्रसंस्करण

आँवले के फल अम्लीय एवं कसैले होने के कारण तुरन्त उपभोग हेतु उपयुक्त नहीं होते हैं। अत फलों को संसाधित पदार्थ बनाने में उपयोग किया जा सकता है।

जूस

आँवले के छोटे-छोटे टुकड़ों को फिल्टर प्रेस के द्वारा दबा कर जूस निकाला जाता है। उसको 780 ब्रिक्स तक गर्म कर निर्जीवाणुक या जीवाणु



हीन कर दिया जाता है। तैयार जूस को कांच की निर्जमीकृत बोतलों में भर देते हैं। इस प्रकार से तैयार जूस 500 पी.पी.एम. सल्फर डाईआक्साइड या 1 ग्राम पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट प्रति लीटर के हिसाब से मिला कर परिरक्षित किया जाता है।

स्कवैश

स्कवैश, जूस या गूदा से बनाया जाता है। स्कवैश में 35 से 40 प्रतिशत जूस में 50 प्रतिशत चीनी, 1.1 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल एवं 350 पी.पी.एम. सल्फर डाईआक्साइड (750 मिली ग्राम /िकलोग्राम) मिलाते हैं। अच्छी प्रकार से मिलाने के बाद हल्की आंच पर गर्म करके, साफ की गई निजर्मीकृत बोतलों में भर कर भंडारित करते है।

इस्तेमाल करते समय तीन भाग पानी में एक भाग स्कवैश को मिला लेते हैं।

मुरब्बा

बाजार में उपलब्ध आँवले के उत्पादों में मुरब्बा एक प्रमुख उत्पाद है। मुरब्बा बनाने के कई तरीके है। पारम्परिक रूप से मुरब्बा बनाने हेतु गूदे हुए आँवले के फलों को 2-8 प्रतिशत तक नमक के घोल या चूने के पानी में 1-1 दिनों तक रखते हैं। जिससे फलों का कसैलापन दूर हो जाता है। तदुपरान्त फलों को अच्छी प्रकार से धो कर उतनी ही मात्रा में चीनी मिला कर रात्रि भर के लिए रख देते हैं। दूसरे दिन चीनी के घोल को 700 ब्रिक्स टी.एस.एस. तक सान्द्रित करके उसमें फलों को डुबो देते हैं। इस प्रक्रिया को तीन या चार बार दोहराते हैं। अंत में तैयार मुरब्बे को साफ-सुथरे जार में 700-720 ब्रिक्स ताले शर्करा के घोल के साथ डिब्बा बंदी कर देते हैं। मुरब्बा



बनाने की एक विधि का मानकीकरण लखनऊ में किया गया है। इस विधि में 4-6 मिनट तक खौलते हुए 2 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोक्साइड के घोल में, तदुपरान्त 1 ग्राम फिटकारी प्रति लीटर के हिसाब से इस घोल में मिलाकर एक मिनट तक गर्म करते हैं। इसके बाद पानी को निथार लेते हैं तथा फलों को बहते हुए पानी में अच्छी

तरह धोते हैं, जब तक फलों का छिलका पूरी तरह से साफ न हो जाये। फिर फलों को 20 मिनट तक 2 प्रतिशत साईंट्रिक अम्ल के घोल में रखते हैं। पुनः पानी को निथार कर फलों की सतह को सुखा लेते हैं। इन फलों को खौलते हुए अम्लीकृत शर्करा के घोल 800 ब्रिक्स एवं 0.7 प्रतिशत खटास में डाल कर जार में भर देते हैं। दो दिनों बाद शर्करा के घोल को 800 ब्रिक्स तक पुनरू शर्करा मिला कर गर्म कर सान्द्रित कर लेते हैं। इस प्रक्रिया की दो बार पुनरावृत्ति करके मुरब्बे को साफ-सुथरे जार में भर कर सील कर देते हैं।

शर्करा के घोल में आँवला की फाँके यह एक नया उत्पाद है। उत्पाद इसमें आँवले में विद्यमान पौष्टिक गुणों को अधिक मात्रा में संरक्षित किया जाता है जो कि मुरब्बा बनने की जटिल प्रक्रिया के दौरान नष्ट हो जाते हैं। फलों को खौलते पानी में 6-8 मिनट तक रखते हैं। फिर ठंडा करके, फाँके अलग कर ली जाती है। इसके बाद इन फांकों को 0.5 प्रतिशत खटास युक्त विभिन्न सान्द्रन वाले (50, 60, एवं 700 ब्रिक्स) शर्करा के घोलों में, घंटे प्रत्येक में क्रमशरू रखते है। अंत में शर्करा के घोल को चीनी मिला कर एवं खौला कर, 700 ब्रिक्स तक सान्द्रिक कर लेते है इन फांकों को इस घोल में मिला कर साफ-सुथरे जार में बंद कर लेते हैं।

कैंडी

फलों को अच्छी तरह से पानी से धोने के उपरांत उन्हें खौलते पानी में 6-8 मिनट तक गर्म करते हैं । फिर ठंडा करने के बाद फलों से फाँके अलग कर ली जाती है। इन फांकों को 600 ब्रिक्स एवं 0.7 प्रतिशत अम्लीय घोल (1 रू 1.5) के अनुपात में रात भर डुबो कर रखते हैं तािक परसरणी विधि द्वारा फांकों में शर्करा तथा अम्ल को रिसाया जा सके। दूसरे दिन फांकों को घोल से निकाल कर घोल को गर्म कर एवं उसमें शर्करा मिला कर उसकी सांद्रता 700 ब्रिक्स तक लाते हैं। टुकड़ों को पुनरू रात भर भिगो देते हैं। दूसरे दिन शर्करा के घोल से निकाल कर टुकड़ों को गुनगुने



पानी में धो लेते हैं ताकि फांकों की सतह पर लगी शर्करा घुल जाय। फिर फांकों को 600 ब्रिक्स तापमान पर विद्युत् चालित निर्जलीकरण यंत्र में 8-10 घंटों तक रख कर सुखा लेते हैं। इन सूखी फांकों में जल की मात्रा 10 प्रतिशत तक होनी चाहिए। इस प्रकार तैयार फांके 'कैन्डी' कहलाती हैं और उन्हें पालीथिन की थैलियों में अथवा जार में भर कर भंडारित करते हैं।

चूर्ण



आँवले के फल से अलग की गई फांकों को छोटे-

छोटे टुकड़ों में काट कर उन्हें विद्युत् चालित यंत्र में 600 सेंटीग्रेट पर 8-10 घंटे सुखाते हैं। तदुपरान्त उनकों पीस कर चूर्ण बना लेते हैं। आँवले का चूर्ण बनाने हेतु प्रति 100 ग्राम चूर्ण में 8 ग्राम साधारण नमक, 16 ग्राम काला नमक, 15 ग्राम चीनी, 3 ग्राम साइट्रिक अम्ल, 2 ग्राम पिसी काली मिर्च, 1 ग्राम हींग, 1 ग्राम भुना पिसा जीरा, 1 ग्राम पिसी सौंफ, 1.5 ग्राम सोंठ एवं 0.5 ग्राम अजवायन मिलते हैं। अजवायन के स्थान पर 2-5 ग्राम पिसे पुदीना की पत्ती को भी मिला सकते हैं। तैयार चूर्ण को सूखे जार में हवा अवरोधी अवस्था में भंडारित कर लेते हैं।

उपयोग

इसका फल तीक्ष्ण शीतलता दायक एवं मूत्रक और मृदुरेचक होता है। एक चम्मच आँवले के रस

को यदि शहद के साथ मिला कर सेवन किया जाय तो इससे कई प्रकार के विकार जैसे क्षय रोग, दमा, खून का बहना, स्कर्वी, मधुमेह, खून की कमी, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, कैंसर एवं अन्य मस्तिष्क विकार एन्फ्जलुएन्जा, ठंडक, समय से पहले बुढ़ापा एवं बालों का झड़ना एवं सफेद होने से बचा जा सकता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि यदि एक चम्मच ताजे आँवले का रस, एक कप करेले के रस में मिश्रित करके दो महीने तक प्रातः काल सेवन किया जाय तो प्राकृतिक इन्स्लिन का श्राव बढ़ जाता है। इस प्रकार यह मधुमेह रोग में रक्त मधु को नियंत्रित करके शरीर को स्वस्थ करता है। साथ ही रक्त की कमी, सामान्य दुर्बलता तथा अन्य कई परेशानियों से मुक्ति दिलाता है।

ऊषर सुधार किसान उद्धार

ब्रजेश कुमार 1* , विजय उपाध्याय 2 एवं योगेश कुमार अग्रवाल 3

¹आदर्श कृष्णा महाविद्यालय शिकोहाबाद, (उ.प्र.)

² कृषि और पशु चिकित्सा विज्ञान संकाय मेवाड़ यूनिवर्सिटी, चित्तौरगढ़ - राजस्थान-312901

³वानिकी महाविद्यालय

सैम हिग्गिनबोटोम यूनिवर्सिटी ऑफ़ एग्रीकल्चर टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज प्रयागराज, (उ.प्र.)

ई मेल:- vijayupadhyay193@gmail.com

आज निरंतर वैश्विक आवादी बढ़ने के कारण खाद्यानों की निरंतर कमी आती जा रही है। जिससे केबल भारत वर्ष ही प्रभावित ही नहीं बल्कि पूरा विश्व प्रभावित है। खाद्यान की पूर्ती के लिए निरन्तर कदम उठाये जा रहे है, विभिन्न तरीके के उन्नत बीज, खाद तथा नई नई प्रजातियां तैयार की जा रही है, लेकिन इन सभी को मद्दे नजर रखते हुए कृषि करने के लिए तो जमीन की आवश्यकता है। क्योंकि खेती तो उपजाऊ जमीन पर की जा सकती है, इसलिए हमारे भारतवर्ष में कही भी उषर जमीन न रहे हर कोना कोना उपजाऊ जमीन में बदल जाये तो हम अधिक खाद्यानो का उत्त्पादन करने में सफल रहेंगे । भारतवर्ष में लगभग ९ करोड़ ३६ लाख ९० हजार भूमि बंजर पड़ी है, इस भूमि का या तो कोई स्वामी नहीं या स्वामी होते हुए भी किसी प्रकार की तकनिकी की कमी के द्वारा कृषि योग्य भूमि तैयार नहीं हो पा रही है। ऊषर भूमि को सुधारने के लिए तकनीक एक अहम् हथियार है। मिटटी की उर्वरा शक्ती बढ़ाने के लिए. अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग निरंतर बढ़ता चला जा रहा है, जिससे भूमि उपजाऊ न होकर अनुपजाऊ होती चली जा रही है।

आम तौर पर जो भूमि खाली पड़ी है, उसे बंजर भुमि कहा जाता है। इसके विकास के लिए पहला कदम बंजर भूमि की पहचान करना है। इसमें कुछ निजी, सरकारी तथा कुछ सार्वजानिक संस्थाओं की है। बंजर भूमि में घुलनशील नमक जैसे क्लोरॉइड, सोडियम सल्फेट, कैल्सियम और मैग्नीशियम अधिक मात्रा में पाए जाते है । ऐसी मिट्टिया लवणीय कही जाती है जिनका पी. एच. मान ८.२ से नीचे रहता है। जिससे फसल की वृद्धि रुक जाती है। या तो अधिक सोडियम आयनो की उपस्थिति से मिट्टी में क्षारीयता पैदा हो जाती है। इसमे सोडियम का गाढ़ापन १५% से अधिक होता है। इन मिट्टियों का पी. एच. मान ८.२ से अधिक होता है। इनमे अधिकतर सोडियम कार्बोनेट आयन अधिक होता है और मिट्टियों में वायु प्रवेश नहीं हो पाती और चिपचिपाहट पोशाक तत्वों की मृदा में कमी होने के कारण मिट्टी अनउपजाऊ हो जाती है। कुछ क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण किसान भूमि को छोड़ देते है, और अधिक समय तक कृषि क्रियाएँ नहीं करते अर्थात् लम्बे समय तक खेत परती पड़े रहने से अनउपजाऊ मैं बदल जाती है।

बंजर भूमि होने के कारण

बंजर भूमि के निम्न लिखित कारण हो सकते है -

- अनउपजाऊ भूमि पर खेतीबाड़ी की उपेक्षा।
- उस भूमि पर पाए जाने वाले जंगलों को नष्ट करने के कारण।
- 3. खेती योग्य भूमि तथा जंगलों मैं पाए जाने बाली मिट्टी मैं नमी की कमी।
- 4. औद्योगीकरण से पारिस्थितिकी संतुलन बिगड जाने के कारण ।
- 5. किसी क्षेत्र मैं अनियंत्रित पानी के जमाब के कारण।
- 6. पालतू पशुओं की अंधाधुंध चराई से सारी वनस्पती नष्ट हो जाती है, और मृदा कटाव की सम्भाबना बढ़ जाती है।
- 7. बंजर भूमि मैं वनष्पतिकरण के लिए इस्थानिया लोगो मैं जागरिकता का अभाव।
- 8. बंजर भूमि का उचित प्रबंधन न होना। बंजर भूमि के प्रकार भारत वर्ष में बंजर भूमियों के निम्न लिखित प्रकार है -
 - 1. उथली मिट्टी
 - 2. रेत के टीले
 - 3. तंग घाटियां और नदियों के किनारे
 - 4. जल मग्न तथा दलदली क्षेत्र
 - 5. लवणीय मृदा
 - 6. क्षारीय मिट्टियाँ तथा ऊषर भूमि
 - 7. सूखे से प्रभावित खेती योग्य भूमि

ऊषर सुधार के उपाय

ऊषर सुधारने के लिए आप अपने स्थानीय ग्राम खंड अथवा जिला विकास अधिकारी से संपर्क कर ऊषर सुधार सम्बन्धी योजना, अनुदान व प्रशिक्षण के क्षेत्र मैं जानकारी ले सकते हैं। ऊषर सुधार के निम्न लिखित उपाय है।

मिट्टी की जाँच

पी. एच. मान और खेत की मिट्टी की क्षमता यह तय करती है, की मिट्टी मैं कौन सी फसल हो सकती है।

Issue: April 2021

मेढ़ बंधी

भूमि की मेढ़ बंधी होने से उस की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है, इससे मिट्टी की नमी बढ़ जाती है और खेत मैं अच्छा फसल उत्पादन होता है।

स्क्रेपिंग (खुरचन)

मिट्टी की ऊपरी परतों की खुरच कर हटा देना चाहिए ताकि नमक पूरी तरह से हट जाये। इसमे कुछ सावधानी बरतनी चाहिए, ऊपर की खुर्ची हुई मिट्टी को किसी गड्ढे मैं दबा दे या पानी मैं बहा दें ताकि बरसात के समय मैं फिर से खेत मैं न आ जाये।

उप भूखंड में विभाजन

खेत को छोटी छोटी क्यारियों मैं बाँट देना चाहिए।

समतलीकरण

यदि खेत समतल नहीं होगा तो खेत मैं डाले जाने बाली जिप्सम किसी एक जगह इकट्ठी हो जाएगी और असर एकसमान नहीं होगा जो की अनुचित है।

खेत नाली

समतल हो गए खेत मैं खेत की ढाल नाली बनाना चाहिए, इसका उपयोग जल निकास के लिए किया जाता है।

संपर्क नाली

खेत मैं पानी भरकर उसे निकालना ऊषर सुधार को एक अहम् भूमिका अदा करता है। इसके लिए खेत की सीमा से सटी एक नाली बनाये जिसमे से पानी निकल कर एक बड़े नाले मैं चला जाये।

मुख्य नाली

यदि बड़ा नाला दूर है तो संपर्क नाली और बड़े नाले के बीच मैं एक मुख्य नाली बनाई पड़ती है।

बोरिंग

खेत मैं एक बोरिंग होना अति आवश्यक है।

नलकूप

खेत पर नलकूप की सुविधा होने से आकस्मिक सिचाई के लिए अत्यंत सुविधा होती है।

सिचाईं नाली

सिचाईं नाली खेत के हमेशा ऊँचे ढाल से नीचे ढाल की ओर बनायीं जाती है।

निरधावन/ धोवन

ऊसर जमीन को १५ सेमी ऊँचा पानी से भर देते हैं, और ४८ घंटे बाद जब पानी को बहाया जाता हैं तो इसके साथ साथ नुकसान दायक लवण भी पानी मैं होकर चले जाते हैं।

जिप्सम मिलाना

निरधावन की क्रिया के बाद जिप्सम को मिट्टी मैं मिलाना चाहिए, जिप्सम की मात्रा अधिक या कम नहीं होना चाहिए।

निक्षालन

मिट्टी में जिप्सम को भली प्रकार से मिला देने के बाद जून के दूसरे पखवाड़े में खेत को एक बार फिर १०-१२ सेमी ऊँचे पानी से भर देते है, और १०-१२ दिन के बाद बचे हुए पानी को निकाल देते हैं।

खेत सुधार

निक्षालन के बाद अब खेत धान की खेती के लिए तैयार हो जाता है, किन्तु इसके बाद किसान को खेत मैं गोबर की खाद, हरी खाद, नापेड, तथा केचुएं की खाद मिलाना अति उत्तम होगा।

सुझाव

उपर्युक्त सभी सुधार क्रियायें करने के बाद भूमि कभी सीधे उत्पादन नहीं देती, उत्पादन के लिए खेत की मिट्टी तैयार होने के लिए कम से कम ४ -५ वर्ष का समय लग ही जाता हैं। इस बीच में खरीफ में धान, रवी में जौ, जई तथा जायद में ढेंचा आदि उगाएं और फसल का कोई भी भाग खेत से बहार न फेंके व इसे खेत मैं विछावन करें तो और उत्तम होगा। यदि उपलब्ध हो तो खेत में खाली होने के समय पशुओं के झुंडो को विश्राम करवाएं जैसे भेड़, बकरी, ऊँट, गाय इत्यादि।

वन एवं उनका पारम्परिक महत्व

विजेन्द्र कुमार सिंह, घनश्याम एवं डॉ .एम के झारिया

प्रक्षेत्र वानिकी विभाग, संत गहिरा गुरू विश्वविद्यालय सरगुजा अंम्बिकापुर (छत्तीसगढ़) 497001 E-mail: gosai4423@gmail.com

इह पुष्पिताः फलवन्तः च मानवान् तर्पयन्ति, वृक्षाः वृक्षदं पुत्रवत् परत्र च तारयन्ति ।

सारांश

भारत मे वनों का पारम्परिक एंव विशेष आर्थिक महत्व है। भारत में कुल वन 712249 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है, भारत के भौगोलिक क्षेत्रफल का 21.67 प्रतिशत भाग वनों से घिरा हुआ है। भारत के विभिन्न राज्य जंगलों से घिरे हुए हैं। जैसे - कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़ इत्यादि।

वन में पाए जाने वाले प्राकृतिक वन संपदा जिससे सरकार को आर्थिक लाभ होता है, जंगलों में विभिन्न वन्यजीव, पर्यटन स्थल इत्यादि आकर्षण का केंद्र रहता है।

जंगलों का औषधीय महत्व हजारों वर्षों से चलता आ रहा है, जंगलों से कंदमूल, फल, फुल का उपयोग कर कई प्रकार की बीमारियों को दूर करने में कारगर साबित रहा है। जंगलों में पाए जाने वाले विभिन्न फल जिसका सेवन कर मानव कई वर्षों तक जीता रहा है। जंगलों से प्राप्त उत्पाद का उपयोग कर मानव अपनी आर्थिक स्थित में सुधार कर रहा है।

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में जंगल का महत्वपूर्ण योगदान रखता है। वन संरक्षण के लिए विभिन्न नियम कानून अधिनियम बनाए गए हैं जिन का उल्लंघन करने पर लोगों को जेल तथा जुर्माना लगाया जाता है इस तरह पेड़ पौधों का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व रहा है।

Issue: April 2021

प्रस्तावना

जंगल मानव के लिए एक वरदान है। पूरा दुनिया इस बात से छिपा नहीं है, कि मनुष्य के लिए पेड़ पौधे कितना आवश्यक है मनुष्य के श्वसन क्रिया से लेकर भोजन तक की प्रक्रिया पेड़ पौधे पर निर्भर है। आज से नहीं वरन प्राचीन काल से जंगल का अत्यधिक महत्व रहा है जंगल से कई आदिवासी कई परिवार जिनका जीविकापार्जन चल रहा हैं। जंगल से प्राप्त खनिज पदार्थ, लौह अयस्क, औषधि पौधे, तेंदुपत्ता, साल बीज, चिरौंदी, दोना पत्तल, महुआ, हर्रा, चकोड़ा, शहद, करंज जैसे हजारों उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं, जिससे सरकार को आर्थिक लाभ होता है। जंगल से लगे ग्रामीण आदिवासी जनजीवन का सुधार होता है। जंगल का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में है जैसे कागज उद्योग, कुर्सी उद्योग, कपड़ा उद्योग, कपड़ा उद्योग, कपड़ा उद्योग, कपड़ा उद्योग, कपड़ा उद्योग, कपड़ा उद्योग,

औषधि उद्योग इस तरह से कई क्षेत्र हैं जिसमें वनों का अत्यधिक महत्व है।

ग्रामीण जनजीवन की आर्थिक स्थिति में सुधार जंगलों से लगे कई परिवारों को रोजगार की प्राप्ति हुआ है, कई जनजीवन इन्हीं जंगलों के ऊपर निर्भर है लघु कुटीर उद्योग चला रहे ग्रामीण जिनका आजीविका का संसाधन है। समय पर वर्षा होना पर्यावरण संतुलन को बनाए रखना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, वनों का जहां

एक ओर जंगलों की बहुत ही कटाई हो रहा है वहीं दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण में लगातार वृद्धि हो रहा है, ऐसी परिस्थिति के कारण बेमौसम वर्षा, ओजोन होल क्षतिग्रस्त होना एक बड़ी समस्या है।

प्रकृति में तापमान का घटना बढना भी वन ऊपर निर्भर करता है। पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रत्येक वर्ष वन महोत्सव का आयोजन किया जाता है, वन महोत्सव में कई हजार पौधों की रोपाई की जाती है जिस में कुछ ही पौधों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

वनों में रहने वाले सैकड़ों वन्यजीव जिसका प्राकृतिक आश्रय स्थल जंगल होता है, वन्यजीवों व पेड पौधों से परिस्थितिक तंत्र का संतुलन बना रहता है।

भारतीय वन अधिनियम

जंगलों के संरक्षण के लिए विभिन्न अधिनियम बनाए गए जिन का उल्लंघन करने पर लोगों पर उचित कार्यवाही किया जाता है वन अधिनियम के अंतर्गत वन संरक्षण पर्यावरण संरक्षण वन्य जीव संरक्षण इत्यादि है। भारतीय वन अधिनियम 1927 भारतीय वन अधिनियम 1860 भारतीय वन अधिनियम 1980 राष्ट्रीय वन नीति 1988 वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 जैव विविधता संरक्षण अधिनियम 2003 वन अधिकार अधिनियम 2006 हरित राजमार्ग अधिनियम 2015

वनों का विभिन्न क्षेत्र में महत्व

आर्थिक महत्व

आज से कई सौ वर्ष पहले वृक्षों के सड़ने गलने से भूमि के भीतर कोयला इंधन के रूप में मिल रहा है। तेन्दुपत्ता का इससे कुछ प्रतिशत आर्थिक लाभ हो रहा है इसी तरह कई वन संपदा हमें वनों से प्राप्त हो रही है। वनो में पाये जाने वाले विभिन्न औषधीय पौधे जो कि अधिकाधिक महत्व रखता है। सहकारी तेन्दुपत्ता क्रय समिती साल बीज महुआ, हर्रा, चकोड़ा इत्यादि आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूण है।

पर्यावरण

वातावरण को मानव अनुकूल बनाए रखने में पेड़ पौधों का महत्वपूर्ण योगदान है पेड़ पौधों से ही हमें ऑक्सीजन मिलता है जिसे हम आसानी से श्वांस ले पाते हैं, पेड़ पौधे कार्बन डाइऑक्साइड को लेकर हमें ऑक्सीजन प्रदान करता है संसार का 20 प्रतिशत ऑक्सीजन अमेजान के जंगल से

आता है इसलिए इसे पृथ्वी का फेफड़ा भी कहते हैं। पेड़ पौधे पर्यावरण को बनाए रखने में मदद करते हैं। वातावरण में तापमान का संतुलन बना रहता है। प्रत्येक वर्ष 5 जून को पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। वर्षा का समय पर होना इस प्रक्रिया को पूरा करने में पेड़-पौधों की अहम भूमिका रहती है। वाष्प उत्सर्जन, वाष्पीकरण जैसी प्रक्रिया से पानी गिरता है इसलिए यह भी माना जाता है कि जहां जंगल होते हैं वहां ज्यादा बारिश होती है।

जैव विविधता

प्रकृति में पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के लिए जैव विविधता एक महत्वपूर्ण कारक है, जैव विविधता से भोजन कपड़ा, लकड़ी, इंधन, चारा जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। कृषि उत्पादन बढ़ाने में इसका मुख्य योगदान है। पर्यावरण प्रदूषण के निस्तारण में भी सहायक होता है। ऐसे विभिन्न प्रारूपों में जैव विविधता महत्त्व रखती है।

पर्यटन स्थल

कई पर्यटन स्थल जंगलों में हैं, जिनसे सरकार को आर्थिक लाभ हो रहा है। विश्व में बहुत से प्रकृति प्रेमी हैं जो प्राकृतिक स्थलों में जाते हैं। सैकड़ों हजारों लोग तनाव दूर करने के लिए पिकनिक मनाने के लिए पर्यटन स्थल पर जाते हैं। पर्यटन स्थल को देखने के लिए प्रत्येक स्थल पर कहीं ना कहीं से लोग जाते रहते हैं। इसी तरह पर्यटन स्थल को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने विभिन्न योजनाओं को बढ़ावा दिया है।

उद्योग

विभिन्न उद्योग जंगलों, पेड़ पौधों पर निर्भर रहते हैं । इन उद्योगों में सैकड़ों हजारों लोगों को रोजगार मिलता है जिनका जीवन यापन आसानी से चलता है।

कागज उद्योग

बड़े-बड़े कारखाने कागज बना रहे हैं। बहुत से पेड़ पौधों की प्रजातियों से समाचार पत्र कागज तक बनाया जा रहा है। आधुनिक युग में पुस्तकों की बिक्री हो रही है। कागज को बनाने के लिए बहुत से पेड़ पौधों की कटाई की जा रही है सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों में कागज से लगभग कार्य शुरू होता है तथा अंत होता है कागज शिक्षा के लिए एक मुख्य अवयव है।

फर्नीचर उद्योग

कई उद्योग है जिनमें सोफा, मेज, बेड, अलमारी, खिड़की, दरवाजे आदि लकड़ी के बनाए जा रहे हैं लकड़ी जंगलों से प्राप्त किया जा रहा है, लकड़ियों को डिजाइन कर उसकी उपयोगिता को तथा मार्केटिंग मुल्य को बढ़ाया जा रहा है, इन उद्योगों में कई मजदूर काम कर अपना रोजगार चला रहे हैं इन उद्योगों में इसके अलावा म्यूजिक इंप्लीमेंट जैसे हारमोनियम मैच के लिए बैट स्टम्प, हाकी स्टिक इत्यादि भी बनाए जाते हैं ईनका बाजार में अत्यधिक मुल्य इससे आय की प्राप्ति होती है।

औषधि उद्योग

प्राचीन काल से ही जंगलों, वनो, वृक्षों का औषधीय महत्व रहा है। कई 100 वर्षों पूर्व से जड़ी बूटियों से विभिन्न जीवो की बीमारियों को

दूर किया जा रहा है, आज के जीवन में भी औषधि उद्योग से विभिन्न उत्पाद बनाए जा रहे हैं जिससे रक्तचाप, बवासीर, त्वचा बीमारियों, का इलाज किया जा रहा है। मानव जीवन के लिए औषधि एक महत्वपूर्ण उपयोगी वस्तु है। जंगल के नजदीक रहने वाले, ग्रामीण अंचल में रहने वाले आज भी औषधि के रूप में विभिन्न पेड़ों पौधों के फल, फूल, जड़ तथा छाल का उपयोग कर कई बीमारियों को दूर करते हैं। सरकार भी कई औषधि केंद्र खोले हुए हैं जिनसे औषधियों का अध्ययन कराया जा रहा है । पेड़ पौधों से विभिन्न हर्बल उत्पाद बनाए जा रहे हैं जिससे काफी अच्छी आमदनी प्राप्त हो रही है हाल ही में हुए कोविड-19 महामारी में तुलसी, काली मिर्च, जैसे औषधि गुण वाले हर्बल उत्पाद का अधिकाधिक उपयोग किया गया था।

लघु कुटीर उद्योग

ग्रामीण अंचलों में विभिन्न लघु कुटीर उद्योग चलाए जा रहे हैं जो लगभग जंगलों पर निर्भर रहते हैं। दोना पत्तल जंगल से पत्ती इकट्ठा कर दोना पत्तल बनाए जा रहे हैं तथा उन्हें बेचकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा रही है। कुशल कारीगरों के द्वारा विभिन्न उत्पाद बनाया जाता है जिनसे अनेक आकर्षक गिफ्ट बनती है यह स्वदेशी सामानों को बढ़ावा देता है।

तेंदूपत्ता संग्रहण

सरकार कई वर्षों से तेंदूपत्ता संग्रहण खरीदी कर रही है साल बीज की भी खरीदी करता है इससे ग्रामीण जनता को रोजगार मिलता है कई परिवार इस रोजगार में शामिल रहे हैं तेंदूपत्ता संग्रहण के तहत कई योजनाएं चलाई जा रही हैं। संग्रहण करने वाले परिवार के छात्रों को स्कॉलरशिप देते हैं जिससे ग्रामीण अंचल की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है।

तेंदूपत्ता के अलावा भी सरकार द्वारा साल बीज, चिरौंजी, दोना पत्तल, महुआ, हर्रा, चकोड़ा, शहद, करंज जैसे हजारों उत्पाद की खरीदी की जाती है।

तेंदूपत्ता योजना सरकार द्धारा चलाये जा रहे विभिन्न वनोपज

वनोपज	दर (रूपये) में
महुआ	35
कुसुम की लाख	230
साल बीजा	25
थ्चरोंजी	130
चकोड़ा	20

वृक्षो की उपयोगिता

पौधे मानव शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की एक विस्तृत विविधता का एक स्रोत हैं। मनुष्य के लिए फल, फूल भोजन पौधों से आता है, यहां तक कि जानवर भी पौधों पर निर्भर रहते हैं। इसलिए, हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पौधों से भोजन प्राप्त करते हैं। एक दैनिक आधार पर फल और सब्जियों का उपभोग करने की सलाह दी जाती है क्योंकि यह समृद्ध पोषक तत्वों का एक स्रोत है। पौधे हमें सब्जियां, अनाज, दालें, फल, चीनी, मसाले, तेल आदि प्रदान करते

हैं । पौधों के विभिन्न भाग अलग-अलग खाद्य सामग्री प्रदान करते हैं ।

पारिस्थितिक और पर्यावरणीय मूल्य

पेड़ ऑक्सीजन प्रदान करके, वायु गुणवत्ता में सुधार करता है, जलवायु में सुधार होता है, जल संरक्षण, मिट्टी के संरक्षण और पर्यावरण के संतुलन में योगदान देते हैं। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के दौरान, पेड़ कार्बन डाइऑक्साइड लेते हैं और ऑक्सीजन का उत्पादन करते हैं जिससे हम श्वांस लेते हैं।

वनो का सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक महत्व भारत प्रारंभ से ही कृषि प्रधान देश होने के कारण वनों का भारतीय समाज में अत्यधिक संबंध रहा है यही कारण है कि ऋषि मुनि से लेकर राजा महराजा तक ही नहीं अपितु आधुनिक समाज तक महत्वपूर्ण समझा जाता रहा है । भारतीय शासकों में प्राचीन काल से ही वृक्षारोपण की ओर अधिक ध्यान दिया जिनमें सम्राट अशोक, शेर शाह सूरी, मुगल बादशाह प्रमुख हैं। मुगल बादशाह द्वारा लगाए गए बाग आज भी श्रीनगर, लाहौर, इलाहाबाद, दिल्ली आदि नगरों में देखे जा सकते हैं। जंगलों में रहने वाले आदिवासी वन में रहकर अपना जीवन यापन करते थे तथा पौधों की

जगला म रहन वाल आदिवासा वन म रहकर अपना जीवन यापन करते थे तथा पौधों की देखभाल कर उन्हें बड़ा करते थे। दुर्लभ एवं अतिउपयोगी वृक्षों की वृद्धि पोषण एवं संवर्धन किया गया, इनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर उन्हें धार्मिक विश्वासों की परिधि में कस कर उनके वंश को अमर कर दिया गया। इस प्रकार वृक्षों की पूजा प्रारंभ हो गई इन अति उपयोगी वृक्षों की शृंखला में महुआ, पीपल, नीम, तुलसी, आंवला, अर्जुन आदि रखे गए।

वृक्ष हमें फल, पुष्प, छाया, आक्सीजन ही नही अपितु वृक्ष हमें जीवन भी देता है।

An overview of organic farming situation in India

Anjali Tiwari, Vikas Kumar and Hoshiyar Singh

Department of Agriculture Vivekananda Global University, Jaipur Email: vikas.kumar@vgu.ac.in

Introduction

Organic farming has expanded gradual momentum in recent years and it estimated 43.1 million hectare (ha) land is being certified as organic in 170 countries (The World of Organic Agriculture- Statistics and Emerging Trends, 2015). The largest areas of organic agricultural land are Oceania (17.3 m ha) followed by Europe (11.5 m ha), Latin America (6.6 m ha), Asia (3.4 m ha), North America (3.0 m ha) and Africa (1.2 m ha) continent. Australia (17.2 m ha) is the most organic agricultural land country flowed Argentina (3.2 m ha) and United State (2.2 m ha). In India, about 528,171 ha is under organic farming (certified + area under organic conversion) with 44,926 number of certified organic farms which is 0.3% of the total agricultural land (Ramesh et al., 2010). Organic agricultural practices started more than 4000 years ago and mentioned in Arthashastra, farmers in the Vedic period possessed a fair knowledge of soil fertility, plant protection, seed selection, sowing season and sustainability of crops in different lands (Sofia et al., 2006). Agriculture is the backbone of theIndian economy.Agriculture and allied like sectors forestry and fisheries accounted for 13.7% of the GDP (gross domestic product) in 2013 about 50% of the workforce (Anuraj, 2016).

Increasing consciousness about conservation of environment (Ramesh *et al.*, 2005; Roychowdhury *et al.*, 2013), soil fertility, pollution due to fertilizers and

pesticides, genetic erosion, sustainable productivity as well as health hazards associated withagrochemicals consumers' preference to safe and hazardfree food are the major factors that urgent need to the growing interest in alternative method of farming in the world which could satisfy the needs of increased food production as well as providing a security against any potential health problem. The organic moment has initiated conceptualized by Howard (1940). Since 1994, India initiated several government and Non-Government organization for promotion of organic agriculture such as National Programme on Organic Production (NPOP) and National Project on Organic Farming (NPOF). It estimated that approximately 42,000 ha of cultivated land were certified organic but it was more than 9.2 m ha land under certification (1.2 m ha under cultivable land and 8 m ha under forest land) in 2009. The concept of organic agriculture is anidea of efficient use of locally available resources as well as usage of adapted technologies for production and aim at achieving agroecosystems, which are socially and ecologically sustainable (Figure 1). In words, comprehensive another its management approach to improve the health of the underlying productivity of soil. Many people think that use of organic manures and natural methods of plant protection instead using of syntheticfertilizers/ pesticides are organic farming, but it is not true. For instance

organic agriculture is a production system which avoids or largely excludes the use of synthetic compounded fertilizers (Lampkin et al., 1999; Ramesh et al., 2005), pesticides (Palaniappan, 1999), growth regulators and livestock feed additives (Bhattacharyya and Chakraborty, 2005). It relies on crop residues, animal manure, crop rotation, green manure, legumes, off farming organic waste and aspects of biological pest control. Organic farming is done to release nutrients to the crops for increased sustainable production in an ecofriendly and pollution-free environment. It aims to produce crop with a high nutritional value (Figure 2). Organic farming could be capable of sustaining higher crop productivity and improving soil quality andproductivity bymanipulating the soil properties on long According **IPCC** termbasis. to (Intergovernmental Panel on Climate Change) reported that agriculture as practiced today (conventional agriculture, modern agriculture or Green Revolution

agriculture) accounts for about one fifth of the anthropogenic greenhouse effect, producing about 50% and 70%, respectively of the overall anthropogenic methane and nitrogen oxides emissions (Reddy, 2010).

Issue: April 2021

Dr. M.S. Swaminathan has appointed by Ministry of agriculture and cooperation in India under steering committee reported that organicfarming may boost in rain fedareas and in north eastern states, where there waslimited use of fertilizers and other agricultural chemicals. Some of the states have already declared as organic Madhya states such as Pradesh, Uttaranchal and Sikkim but such areasare organic by default (Chandrashekar, 2010). Ramesh et al. (2010) revealed that organic farming was not found economically feasible due to reduce in crop productivity 9.2% and provided higher net profit to farmers 22% compared to conventional farming but there was an overall enhanced soil health and sustainability of crop production.

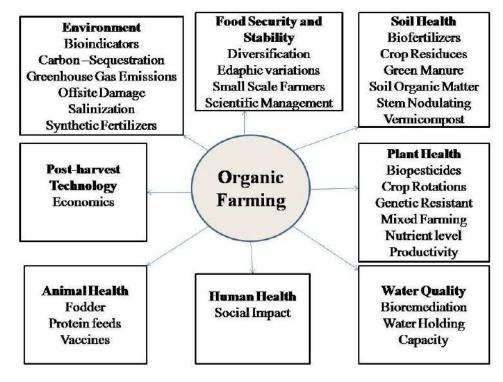


Fig. 1: Overall view of Organic farming

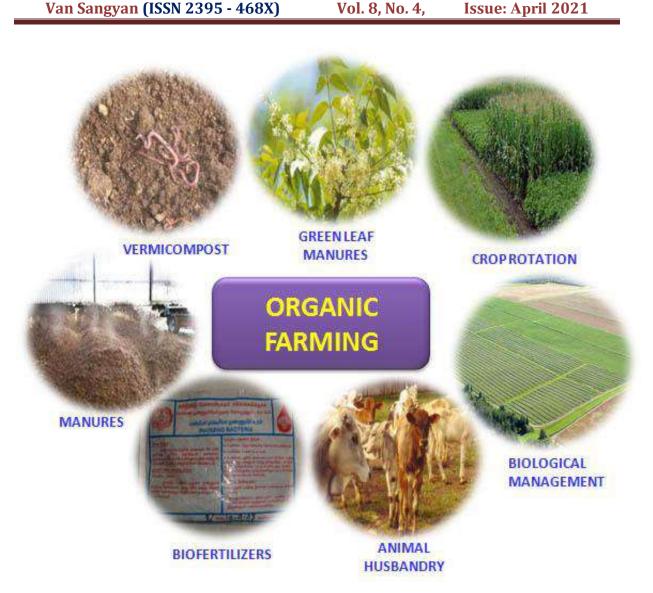


Fig. 2: Components of organic farming

Why it necessary?

The natural resources are rapidly shrinking due to an increasingly industrialized global economy, increasing population density, socio-economic pressures, land gradation, impact of climatic variability on monsoon (temporaland spatial variation in rainfall), increase in surface temperature, increasing phenomenon likes floodsand droughts (Sharma, 2001) and role of various human activities (Kumar, 2021). Sustainable agriculture to meet the country food production requires sustainability of the natural resource (Patle, 2014). Depleting water resources and soil erosion are major threat to country foodproduction and environmental security. Hence, proper management of natural resources by organic agriculture farming may have formeeting food potential maintaining soil fertility and increasing soil carbon pool in different agroecosystems (Pandey and Singh, 2012; Kumar, 2016; Kumar and Tripathi, 2017).

The aims and principles of organic farming

The following principles of organic farming are

To allow everyone involved in organic production and processing a quality of life that meets their basic needs and allows an adequate

- return and satisfaction from their work, including a safe working environment.
- To consider the wider social and ecological impact of the organic production and processing system.
- To create a harmonious balance of life with due consideration for the basic aspects of their innate behavior.
- To develop a valuable and sustainable agroecosystem.
- To encourage and enhance biological cycles within the system, involving farming microorganisms, soil flora and fauna, planta and animals.
- To interact in a constructive and life enhancing way with natural systems and cycles.
- To minimize all forms of pollution.
- To process organic products using renewable resources.
- To produce food of high quality in sufficient quantity.
- To produce fully biodegradable organic products.
- To promote the healthy use and proper care of water, water resources and all life therein.
- To use. as far as possible, renewable resources in locally organized production systems.
- To make it possible for agricultural producers to earn a living through their work and development their potentialities as human being.
- The four pillars of organic farming are organic standards, certification/ regulatory mechanism, technology packages and market network.

Soil properties

Agricultural practices has directly depends on soil properties such as physical. chemical and biological. The secondary data showed that Indian agriculture can be met 25-30 per cent of nutrient supply by various organic sources (Figure 2). Organic sources besides supplying N, P, and K also make unavailable sources of elemental nitrogen, bound phosphates, micronutrients, and decomposed plant residues into anavailable form to facilitate the plants to absorb the nutrients. Densities of bacteria, protozoa, nematodes, and arthropods in soils under organic farming were higher than under conventional farming (Wu et al., 2002). Organic fertility could beencouraged the soil microorganisms, reduced pathogenpopulation, total carbon, cation exchange capacity, andlowered down bulk densities, and also helpful in alleviating the increasing incidence or deficiency of secondary and micronutrients and cable of sustaining high crop productivity and soil health as well as soil quality (Bulluck et al., 2002; Yadav et al.. 2013). Indian conditions, joint composting of the manure slurries with plant residues was more viable and profitable than its separate composting. However, Use of FYM and green manure maintained high levels of Zn, Fe, Cu, and Mn in rice-wheat rotation (Sigh et al., 2002). Addition of carbonaceous materials such as straw, wood, bark, sawdust, or cobs corn helped the composting characteristics of a manure. These materials reduced water content and raised the C: N ratio (Yadav et al., 2013). The National Academy of Agricultural Sciences (NAAS) recommended a holistic

involving integrated approach nutrientmanagement (INM), integrated pest management (IPM) for enhanced input use efficiency, and adoption of regionspecific promising cropping systems as an alternative organicfarming strategy for India and to begin with the practice of organic farming should value crops like spices, medicinalplants, fruits, and vegetables.

Conclusion

Organically managed farm has productivity but there was an overall enhance the soil quality parameters. It is economically feasible to practice organic farming when farmers are able to get premium price for their produce and with the reduced cost of cultivation. In general, consumers of organic products are an affluent, educated, and health conscious group spurred by strong consumerdemand, generous price premium, and concerns about theenvironment. Because of these hidden benefits, conventionalgrowers are turning to organic farming. The whole region as such cannot afford to go for a time because organicat commitments to insure food and nutritional provide This will security. ample opportunity for employment and bring prosperity and peace in the region.

References

- Anuraj, G. 2016. Application of Business Intelligence in Agriculture "2020" System to Improve Efficiency and Support Decision Making in Investments. *Journal of Global Communication* 9: 251-258.
- Bhattacharyya, P. and Chakraborty, G. 2005. Current status of organic farming in India and other countries. *Indian Journal of Fertilizers* 1(9): 111-123.
- Bulluck, L.R. III, Brosius, M., Evanylo, G.K. and Ristaino, J.B. 2002. Organic and synthetic fertility amendments influence

soilmicrobial, physical and chemical properties on organic and conventional farms. *Applied Soil Ecology* 19(2): 147-160.

Issue: April 2021

- Chandrashekar, H.M. 2010. Changing scenario of organic farming in India: Anoverview. *International NGO Journal* 5(1): 034-039.
- Howard, A. 1940. An Agricultural Testaments, Oxford University Press.
- IFOAM (International Federation of Organic Agriculture Movements), 1998. BasicStandards for Organic Production and Processing. IFOAM Tholey-Theley,Germany.
- Kumar, V. 2016. Multifunctional Agroforestry Systems in Tropics Region. *Nature Environment and Pollution Technology* 15(2): 365-376.
- Kumar, V. 2021. Agrobiodiversity, structure compositions and species utilization of homegardens in humid tropics, Kerala, India. *PLOSone* (in press)
- Kumar, V. and Tripathi, A.M. 2017. Vegetation Composition and Functional Changes of Tropical Homegardens: **Prospects** and Challenges. In: Gupta, S.K., Panwar, P. and Kaushal, R. (Eds), Agroforestry for increased production and livelihood security. New India Publishing Agency, New Delhi, pp-475-505.
- Lampkin, N., Foster, C., Padel, S. and Midmore, P. 1999. The policy and regulatory environment for organic farming in Europe. In: Organic farming in Europe: Economics and Policy. Vol 2 Dabbert, Haring, Zanoli (eds). London: Zed Book.

- Palaniappan, S.P. and Annadurai, K. 1999.
 Organic farming- Theory and
 Practices. Scientific Publication,
 India, pp 1-257.
- Pandey, J. and Singh, A. 2012. Opportunities and constraints in organic farming: an Indian perspective. *Journal of Scientific Research* 56: 47-72.
- Patle, G.T., Badyopadhyay, K.K. and Kumar, M. 2014. An overview of organic agriculture: A potential strategy for climate changemitigation. *Journal of Applied and Natural Science* 6 (2): 872-879.
- Ramesh, P., Panwar, N.R., Singh, A.B., Ramana, S., Yadav, S.K., Shrivastava, R. and Rao, A.S. 2010. Status of organic farming in India. *Current Science* 98(9): 1190-1194.
- Ramesh, P., Singh, M. and Rao, A.S. 2005. Organic farming: Its relevance to the Indian context. *Current Science* 88(4): 561-568.
- Reddy, B.S. 2010. Organic farming: status, issues and prospects a review. *Agric. Econ. Res. Rev.* 23: 343-358.
- Roychowdhury, R., Gawwad, M.R.A., Banerjee, U., Bishnu, S. and Tah, J. 2013. Status, Trends and Prospects of Organic Farming in India: A

- Review. Journal of Plant Biology Research 2(2): 38-48.
- S. Wu, S., Ingham, E.R. and Hu, D. 2002. Soil microfloral faunalpopulations in an organic ecosystem in Oregon, USA. InProceedings of the 17thWorld Congress of Soil Science, vol. 5,p. National Queen Sirkit 1756, Convention Centre, Bangkok, Thailand.
- Sharma, A. K. 2001. A Handbook of Organic Farming. Agrobios, Jodhpur, India.
- Singh, S.P., Kumar, R.M. and Subbaiah, S.V. 2002. Effect ofnitrogen and potassium application on grain yield of hybridrice (*Oryza sativa*). In Proceedings of the 2ndInternationalAgronomy Congress, vol. 1, NewDelhi, India.
- Sofia, P.K., Prasad, R. and Vijay, V.K. 2006. Organic farming- tradition reinvented. *Indian Journal of Traditional Knowledge* 5(1): 139-142.
- Yadav, S.K., Babu, S., Yadav, M.K., Singh, K., Yadav, G.S. and Pal, S. 2013. A Review of Organic Farming for Sustainable Agriculture inNorthern India. *International Journal of Agronomy*Article ID 718145,1-8.

Acid rain- A global environmental issue

Saikat Banerjee, K. S. Sengar and Avinash Jain

Forest Ecology and Climate Change Division
Tropical Forest Research Institute
(Indian Council of Forestry Research & Education, Ministry of Environment, Forests and Climate Change, Govt. of India)
Mandla Road, P.o. RFRC, Jabalpur-482021, M.P

Introduction

Acid rain is a rain or any other form of precipitation that is unusually acidic, meaning that it possesses elevated levels of hydrogen ions (low pH) (Weathers and Likens 2006). It can have harmful effects plants, aquatic animals on and infrastructure. Acid rains is a broad term referring to a mixture of wet and dry deposition (deposited material) from the atmosphere containing higher than normal amounts of nitric and sulfuric acids. It literally implies a change toward more acidic conditions of rain, fog or snow affecting the lakes, rivers, ground water, and soil and forest land. Such changes may occur as a result of slow geo-biological processes occurring in nature or faster episodic emissions for volcanic eruptions. Of late, rapid industrialization all over the globe has resulted in acid forming gases into the atmosphere (Mehta 2010). It is an environmental problem that knows no boundary. The precursors, or chemical forerunners, of acid rain formation result from both natural sources, such as volcanoes and decaying vegetation, and man-made sources, primarily emissions of sulfur dioxide (SO₂) and nitrogen oxides (NO_{v}) resulting from fossil combustion. First identified in 1872 in Sweden and studied in the U.S. beginning in the 1950s, acid rain is precipitation in the form of rain, snow, hail, dew, or fog that transports sulfur and nitrogen compounds from the high atmosphere to

the ground (Likens *et al.* 1972). Sulfur dioxide (SO₂) and nitrogen oxides (NO, NO₂) are bi-products from burning fuels in electric utilities and from other industrial and natural sources. These chemicals react with water, oxygen, carbon dioxide, and sunlight in the atmosphere to form sulfuric and nitric acids. The acids reach the ground and change the chemistry within the environment.

Issue: April 2021

It became a household term in the 1980s when unchecked emissions from industry and motor vehicles were blamed for causing environmental deterioration. Scientific evidence has linked acid rain to decreased fish and wildlife populations, degraded lakes and streams, and human health hazards. Although the term has since faded from public consciousness, acid rain is a complex and global problem that still exists today.

Acid rain has already been reported in some parts of India, and the situation is likely to get worse. India faces an increasing threat from acid rain -- earlier believed to be the scourge of the West. The large-scale industrial growth and reliance on the use of coal and crude oil distillates like diesel have acidification of the atmosphere. The of fossil fuels responsible for creation of sulphur dioxide and oxides of nitrogen which lead to the formation of acid rain. Automobile exhaust fumes are partly to blame, but the worst culprits are coal-burning thermal

power plants and the steel industry. Already, a low pH has been observed at Chembur, Maharashtra and Delhi.

Wet and dry deposition

Acidic particles and vapours are deposited in two processes – wet and dry deposition. Wet deposition is acid rain, the process by which acids with a pH normally below 5.6 are removed from the atmosphere in rain, snow, sleet or hail. If the acid chemicals in the air are blown into areas where the weather is wet, the acids can fall to the ground in the form of rain, snow, fog, or mist. As this acidic water flows over and through the ground, it affects a variety of plants and animals. The strength of the effects depends on several factors, including how acidic the water is; the chemistry and buffering capacity of the soils involved; and the types of fish, trees, and other living things that rely on the water. Dry deposition takes place when particles such as fly ash, sulphates, nitrates, and gases (such as SO₂ and NO_x), are deposited on, or absorbed onto, surfaces. The gases can then be converted into acids when they contact water. In areas where the weather is dry, the acid chemicals may become incorporated into dust or smoke and fall to the ground through dry deposition, sticking to the ground, buildings, homes, cars, and trees. Dry deposited gases and particles can be washed from these surfaces by rainstorms, leading to increased runoff. This runoff water makes the resulting mixture more acidic. About half of the acidity in the atmosphere falls back to earth through dry deposition.

Rain is always slightly acidic because it mixes with naturally occurring oxides in the air. When the air becomes more polluted with nitrogen oxides and sulphur dioxide the acidity can increase up to a pH

value of 4. Some rain has even been recorded as being pH 2. Acid rain due to Mathura refinery of Indian Oil Corporation in the state of Uttar Pradesh, India has already damaged Taj Mahal, one of the India's most revered historical monuments. Natural rainfall has a pH of around 6.0. This is because of the effect of carbon dioxide in the air which combines with water to form carbonic acid. The other emissions cause the pH of the rain water to drop below 5.5 and at this level it is considered to be acid rain. In some places, the acidification is so severe that the pH drops to around 4.0. Rare cases have been reported of acid rain having pH of around 2 - 2.5. Acid rain is not limited to the region where sources are located. Prevailing winds can blow chemicals in the atmosphere for hundreds or even thousands of miles before being deposited, regardless of state and country boundaries. For instance, compounds from industry in China can potentially be deposited in the U.S. Midwest. For this reason, acid rain is considered a global problem.

Range of rainwater pH in different parts of India (Modified from Khemani 1993)*

Regions	Cities	pН
Coastal area	Trivendrum	5.3
Industrial area	Chembur	4.8
Power plant	Inderprasth	5.0
	Koradi	5.7
	Singrauli	5.8
Urban area	Pune	6.3
	Delhi	6.1
Non-urban	Sirur	6.7
area	Muktsar	7.3
	Goraur	5.3

Source – Singh and Agrawal (2005, 2008)

Emissions of chemicals leading to acidification

The most important gas which leads to

converted into sulfuric acid and nitric acid (Science Daily 1998).

Issue: April 2021

acidification is sulfur dioxide. Emissions of nitrogen oxides which are oxidized to form nitric acid are of increasing importance due to stricter controls on emissions of sulfur containing compounds. 70 Tg(S) per year in the form of SO₂ comes from fossil fuel combustion and industry, 2.8 Tg(S) from wildfires and 7-8

year

from

volcanoes

Gas phase chemistry

In the gas phase sulfur dioxide is oxidized

by reaction with the hydroxyl radical via an intermolecular reaction:

 $SO_2 + OH \cdot \rightarrow HOSO_2 \cdot$

which is followed by:

 $HOSO_{2} \cdot + O_{2} \rightarrow HO_{2} \cdot + SO_{3}$

In the presence of water, sulfur trioxide (SO₃) is converted rapidly to sulfuric acid $SO_3(g) + H_2O(1) \rightarrow H_2SO_4(aq)$

Nitrogen dioxide reacts with OH to form

nitric acid:

 $NO_2 + OH \cdot \rightarrow HNO_3$

Natural phenomena

per (Berresheim et al. 1995).

Tg(S)

The principal natural phenomena that contribute acid-producing gases to the atmosphere are emissions from volcanoes. Acid-producing gasses are also created by biological processes that occur on the land, in wetlands, and in the oceans The major biological source of sulfur containing compounds is dimethyl sulfide.

Chemistry in cloud droplets

When clouds are present, the loss rate of SO₂ is faster than can be explained by gas phase chemistry alone. This is due to reactions in the liquid water droplets.

Hydrolysis: Sulfur dioxide dissolves in water and then, like carbon dioxide, hydrolyses in a series of equilibrium reactions:

 $SO_2(g) + H_2O \rightleftharpoons SO_2 \cdot H_2O$ $SO_2 \cdot H_2O \rightleftharpoons H^+ + HSO_3^ HSO_3^- \rightleftharpoons H^+ + SO_3^{2-}$

Oxidation: There are a large number of aqueous reactions that oxidize sulfur from S(IV) to S(VI), leading to the formation of sulfuric acid. The most important oxidation reactions are with ozone, hydrogen peroxide and oxygen (reactions with oxygen are catalyzed by iron and manganese in the cloud droplets) (Seinfeld and Pandis 1998).

Soils of coniferous forests are naturally very acidic due to the shedding of needles, and the results of this phenomenon should not be confused with acid rain.

The principal cause of acid rain is sulfur and nitrogen compounds from human sources, such as electricity generation, factories, and motor vehicles. Electrical power generation using coal is among the greatest contributors to gaseous pollutions that are responsible for acidic rain. The be carried hundreds gases can kilometers in the atmosphere before they are converted to acids and deposited. In the past, factories had short funnels to let out smoke but this caused many problems locally; thus, factories now have taller smoke funnels. However, dispersal from these taller stacks causes pollutants to be carried farther, causing widespread ecological damage.

Effects of acid rain

Acid rain can be carried great distances in the atmosphere, not just between countries but also from continent to continent. The acid can also take the form of snow, mists and dry dusts. The rain sometimes falls many miles from the source of pollution but wherever it falls it can have a serious

Chemical processes

Combustion of fuels produces sulfur dioxide and nitric oxides. They are

waters

severe ecosystem imbalances. Acidic lake mav kill

bacteria/microbes/planktons and the lakes become unproductive and life less. Such acidic and lifeless ponds/lakes adversely

affect fisheries and livelihood.

Acid rain can potentially agricultural production by changing the chemical properties of soil, slowing the rate of microbiological processes, and reducing soil nutrients. Roots of natural vegetation and crops can become damaged due to stunted growth. Human effects: Acidic water moving through pipes causes lead and copper to leach into the water. Most public water suppliers remove such dangerous chemicals at the plant, but tainted water could be a problem for residents who don't rely on public water supplies for their drinking water.

Acid rain damage cuticle of plant leaves resulting etiolation of foliage. This in turn photosynthesis. reduces Reduced photosynthesis accompanied by leaf fall reduces plant and crop productivity. Acidic medium promotes leaching of heavy metals such as aluminum, lead and mercury. Such metals when percolate into ground water, affect soil microflora/ micro soil becomes fauna. The lifeless. Absorption of these toxic metal ions by plants and micro organisms affects their metabolism. Both natural vegetation and crops are affected by acid rain. The roots are damaged by acidic rainfall, causing the growth of the plant to be stunted, or even in its death. Nutrients present in the soil, are destroyed by the acidity. Useful micro organisms which release nutrients from decaying organic matter, into the soil are killed off, resulting in less nutrients being available for the plants. The acid rain, falling on the plants damages the waxy layer on the leaves and makes the plant

effect on soil, trees, buildings and water. Prior to falling to the earth, acid-causing emissions (SO₂ and NO_x gases and the related acid particles) contribute to visibility degradation and impact public health.

Acid rain has been linked to detrimental effects in the environment. Soil chemistry can be dramatically changed when base cations, such as calcium and magnesium, are leached by acid rain thereby affecting sensitive species, such as sugar maple (Acer saccharum). It can cause widespread damage to trees. This is especially true of trees at high elevations. . Acidic deposition can damage leaves and also deplete nutrients in forest soils and in trees so that trees become more vulnerable to disease and environmental stress. A healthy lake has a pH of 6.5 or higher. Only a few fish species can survive at a pH of below 5; at a pH of 4, the lake is considered dead. A decrease in fish populations is often the first sign of an acidification problem.

When lakes and streams become more acidic than normal, they cannot continue to support the same types of fish and aquatic life as in the past. Fish communities dwindle due to high mortality, a reduced growth rate, skeletal deformities, and failed reproduction. Lakes ultimately become home only to species that can tolerate high-acid conditions. Game fish, such as trout, are particularly sensitive to acidic water conditions. The pH of the surrounding or medium is very important metabolic processes of aquatic organisms. The eggs or sperms of fish, frogs and other aquatic organisms are very sensitive to pH change. Acid rain kills their gametes affecting the life cycles and productivity and causes death or inability to increase in numbers, affecting aquatic food chains in acidic water bodies, causing vulnerable to diseases. The cumulative effect means that even if the plant survives it will be very weak and unable to survive climatic conditions like strong winds, heavy rainfall, or a short dry period. Plant germination and reproduction is also inhibited by the effects of acid rain.

Production of some vegetables, such as peas and beans, potato, reddish etc, may be reduced by acid rain, growth of pine; eucalyptus etc. may also be impeded.

Several experiments have been carried out in the field and in greenhouse to investigate the effects of acid rain on plants (Temple *et al.* 1992; Gabara *et al.* 2003; Silva *et al.* 2005a). Some species are more sensitive to acid rain than others (Silva *et al.* 2005a, 2005b). The incidence and severity of leaf injury to acid rain is associated to many variables as plant species, age of tissue and plants, foliar wettability, leaf pubescence and environmental factors (Dickison 2000).

Foliar leaching is also possible. Acid rain or acid cloud droplets that fall on the leaves and needles of trees leach the nutrient from them. Calcium, magnesium and potassium ions may be removed from the leaves faster than the roots can resupply them. Ammonia and nitrogen may land on the leaf, either wet or dry and pass through the semi-permeable membranes on the leaf surface. It will then be incorporated into the leaf cells. A chemical interaction takes place in the leaves (cation exchange) and K, Ca and Mg and even S are leached out and get washed away from the leaf surface.

Soil is an environmental medium and has great importance for the ecosystem and economy. The food we eat, the clothes we wear, the water we drink – they all related to the capacity of soil to perform its fundamental functions. When soils are

degraded, this capacity is seriously impaired. Natural soils differ considerably in their acidity and these differences are reflected in the vegetation they carry (Banerjee et al. 1986a, b, c; Banerjee and Nath 1991). For a long time it was not clear how far these differences were due to the sensitivity of the plant roots to the hydrogen ion concentration of the soil or soil solution in which they were growing and how far to secondary effects brought about by the reaction. The reason why plants are sensitive to soil pH is that the pH of a soil affects the concentration of different ions in the soil solution, and so their availability to the plant. Acid rain from soil washes away essential nutrients that the plants are in need. These nutrients are Ca, Mg and K. In addition, acid rain makes the soil acidic. The acid soil is likely to have a higher concentration of aluminium and manganese ions, and a concentration of lower calcium, bicarbonate and molybdate ions. Increasing amounts of acids can mobilize aluminium ions which are normally present in an insoluble nontoxic form of aluminium hydroxide. When the soil pH drops to 5.0 or lower, aluminium ions are dissolved into the water and become toxic to plants. The result may be overall slowing of the growth of the entire plant. The reason of the stunted growth may be 1) a high aluminium ion concentration in the free space in the root surface may prevent the root taking up phosphate (Clarkson 1966, Roy et al.1988), and 2) aluminium inside the living cell may interfere with sugar phosphorylation and reduce DNA synthesis and respiration (Abdalla 2008). The aluminium ion concentration around a root can be very sensitive to pH, for according to Ratio Law in cation exchange studies, the ratio

of the acidity of the hydrogen ion concentration to the cube-root of the aluminium ion concentration is likely to be a characteristic for the soil if minor change in pH occur, so that if the hydrogen ion concentration outside the root is doubled, the aluminium ion concentration will be increased eightfold (Russell 1973). Lawrence et al. (1995) proposed that aluminium, mobilized in the mineral soil by acid deposition, is transported into the forest floor in a reactive form that reduces storage of Ca, the fifth most abundant element in trees and is an essential component for wood formation and the maintenance of cell walls, and thus its availability for root uptake. This result in potential stress to trees and, by increasing the demand for Ca, also decreases neutralization of drainage waters, thereby leading to acidification of lakes and streams.

Acid rain is able to mobilize the cations from the soil in two ways. 1) The hydrogen ion in the acidic water displaces the other positive ions through ion exchange principle and increases the concentration of these ions in the soil water. When the soil particles are no longer able to bind anymore H⁺ ions, the concentration of H+ also increases in the soil. 2) The sulphate and nitrate (- ve the acid rain act as charged) in "counterions" which allow positive ions to be leached from the soil. Thus in two ways, acid rain can unlock the acidity, nutrient and toxic metal that are bound to the soil.

Low soil pHs also reduce the availability of other essential plant mineral nutrients, such as phosphorus, boron and molybdenum. Low soil pH increases the availability of essential metal cations such as iron, manganese, copper and zinc, which can result in plant toxicities. Acid rain has been implicated in contributing to forest degradation especially in high elevation. There also a concern about the impact of acid rain on forest soils. There is good reason to believe that long-term changes in the chemistry of some sensitive soils may have already occurred as a result of acid rain. As acid rain moves through the soils, it can strip away vital plant nutrients through chemical reactions, thus posing a potential threat to future forest productivity (Mehta 2010).

The acid in acid rain can be neutralized by coming into contact with an alkaline substance. Therefore, acid rain has less effect when it falls on alkaline soil. Acid rain effects are greater in areas with acidic soil simply due to lack of neutralization.

Soil biology and soil chemistry can be seriously damaged by acid rain. Some tropical microbes can quickly consume acids but other microbes are unable to tolerate low pHs and are killed (Likens et al. 1996, 2002, Rodhe et al. 2005). The enzymes of these microbes are denatured (changed in shape so they no longer function) by the acid (Stroo and Alexander 1986). The hydronium ions of acid rain also mobilize toxins such as aluminium and leach away essential nutrients such as magnesium. Forest soils tend to be inhabited by fungi, but acid rain shifts forest soils to be more bacterially dominated. In order to fix nitrogen many trees rely on fungi in a symbiotic relationship with their roots. If acidity inhibits the growth of these micorrhizal associations this could lead to trees struggling to fix nitrogen without their symbiotic partners. Moreover, useful microorganisms which release nutrients from decaying organic matter into the soil are killed off, resulting in less nutrients being available for the plants

Aluminum_is often released from soil to soil water, vegetation, lakes, and streams in forested regions with high acid deposition, low stores of available calcium, and high soil acidity. High concentrations of aluminum can be toxic to plants, fish, and other organisms. Depletion of calcium occurs when base cations are displaced from the soil by acid deposition at a rate faster than they can be replenished by the slow breakdown of rocks or the deposition of base cations from the atmosphere. This depletion of base cations fundamentally alters soil processes, compromises the nutrition of some trees, and hinders the capacity for sensitive soils to recover.

Mankind depends upon plants and animals for food. Due to acid rain the entire fish stocks in certain lakes have been wiped out. The economic livelihood of people who depended on fish and other aquatic life suffers as a result. Eating fish which may have been contaminated by mercury can cause serious health problems. In addition to loss of plant and animal life as food sources, acid rain gets into the food we eat, the water we drink, as well as the air we breathe. Due to this asthmatic people and children are directly affected. Urban drinking water supplies generally treated to neutralise some of the effects of acid rain and therefore city dwellers may not directly suffer due to acidified drinking water. But out in the rural areas, those depending upon lakes, rivers, and wells will feel the effects of acid rain on their health. The acidic water moving through pipes causes harmful elements like lead and copper to be leached into the water. Aluminium which dissolves more easily in acid rain as compared to pure rainfall, has been linked to Alzheimer's disease. The treatment of urban water supplies may not include removal of elements like Aluminium, and so is a serious problem in cities too.

Acid rain and dry deposition of acidic particles contribute to the corrosion of (such metals as bronze) and deterioration of paint and stone (such as marble and limestone) on buildings, cultural objects and cars. These effects significantly reduce the societal value of buildings, bridges, railway lines, cultural objects (such as statues, monuments and tombstones) and cars. Dry deposition of acidic compounds can also dirty buildings and other structures, leading to increased maintenance costs. Famous buildings like the Statue of liberty in New York, St. Paul's Cathedral in London etc. have all been damaged by acid rain.

Acid rain is widely affecting India's most famous monument and one of the wonders of the world "Taj Mahal". Due to acid rain the milky white marble of the Taj Mahal is becoming pale. The reason for this is the local foundries and a nearby Mathura oil refinery. As the concentration of sulphur dioxide is increasing in the air of Delhi, there may be danger of corrosion of Red Fort and similar other historical buildings and monuments made up of stones. In Calcutta also, architectures such as the marble-built Victoria Memorial Hall may be in similar danger in the near future.

In recent decades, as Greece has experienced substantial economic expansion and development, pollutants and heavy vehicle emissions from the modern city of Athens have contributed to acid rain and the monumental and sculptural stone of choice for the ancient Greeks, marble is highly susceptible to heavy degradation of the surface of the Hadrian's

Arch at the Acropolis, Athens. The marble became blackened and corroded from acid rain.

The Longmen Grottoes are the most famous ancient sculptural site in China. Through the centuries, natural and manmade factors have damaged the niches, sculptures and paintings. Crevices across the rock base are causing instability and have resulted in the collapse of some niches and the destruction of their contents. This process has been greatly accelerated by increased saline sediments resulting from acid rain.

Acid rain is one of the biggest environmental hazards that we are facing today. It adversely affects plants, animals and human beings and as a result it is not something that we can afford to ignore. The two primary sources of acid rain are SO₂ and NOx. Automobiles are the main source of NOx emissions and utility factories are the main source for SO₂ emissions. Large areas of southeastern Asia are currently being subjected to acid rain or its precursors. China is a leading producer of SO₂, fueled by rapid economic growth and lack of significant air pollution controls. Along with India, the large increase in the use of fossil fuels has led to increased emissions of both SO2 and NOx to the atmosphere. At the same time large amounts of acid-neutralizing particles (dust) in the atmosphere from industrial and agricultural sources has limited or delayed the formation of acid deposition in these areas. It is likely that government regulations of dust emission, because of health concerns, will result in a large increase in acid deposition in these areas in the near future. Governments have passed laws to reduce emissions of SO₂ and NOx but it is of no use unless people start to work together in stopping the release of these pollutants. If the acid rain destroys our environment, eventually it will destroy us as well.

Solutions

Recovery from acid deposition involves decreases in emissions resulting from regulatory controls, which in turn lead to reductions in acid deposition and allow chemical recovery. Chemical recovery is characterized by decreased concentrations of sulfate, nitrate, and aluminum in soils and surface waters. If sufficient, these reductions will eventually lead increased pН and acid-neutralizing capacity (ANC), well as higher as concentrations of base cations. chemical conditions improve, the potential for the second phase of ecosystem recovery, biological recovery, is greatly enhanced.

Lakes that have become highly acidic can be treated by adding large quantities of alkaline substances like quicklime, in a process called liming. Although it has worked in several places, it has not been successful where the lake is very large, making this procedure economically unfeasible, or in other lakes where the flushing rate of the lake waters is too large resulting in the lake becoming acidic again. The best approach seems to be in prevention. To this end environmental regulations have been enacted to limit the quantity of emissions released in the atmosphere. Several industries have added scrubbers to their smoke stacks to reduce the amount of sulphur dioxide dumped in atmosphere. Specially designed catalytic converters are used to ensure that the gases coming out from exhaust pipes of automobiles, are rendered harmless. Several industries which use coal as fuel have begun to wash the coal before using it thereby reducing the amount of Sulphur present in it, and consequently the amount

of emissions. Usage of coal with a low

costly and therefore some companies try to avoid this. If you have the option, switch to a utility that shows more concern for the

Issue: April 2021

environment.

Sulphur content also reduces the problem. We as individuals can take several steps to alleviate the effects of this problem. A reduction in use of vehicles will reduce the amount of emission caused by our vehicles. So do not use the car unless it is absolutely required. For going short distances, walk or try to use a bicycle. This will not only protect the environment but also improve your health. If the distance is greater, try using public transportation. If you must use your vehicle try forming a car pool and share your vehicle with someone else. Ensure that your vehicle is properly tuned, and fitted with a catalytic converter, to reduce the emissions.

Reduce use of electric power. Switch off lights, and other electrical appliances when not required. Do not leave Televisions, VCRs, Microwave Ovens or Music Systems on Stand-by when not required. Switch them off.

Reducing power consumption will reduce the amount of coal burnt to produce electricity, and thus reduce the amount of pollution. This is true even if your electricity company does not use coal for producing electricity, but some other more environmentally friendly way. This is because the electricity you have saved can now be used elsewhere, thus benefiting nature.

Speak to others about this problem. Increasing awareness is one way of ensuring that things are done to solve this global problem. Find out what fuel is being used by your electricity company to produce electricity. If they use coal, ask what methods they use to contain, if not eliminate, the problem of emissions. Washing the coal used, or using coal having a low sulphur content, is

References

- Abdalla, M.M. (2008).Physiological aspects of aluminium toxicity on some metabolic and hormonal of Hordeum contents vulgare seedlings. Aust. J. Basic and Appld. Res., 2: 549-560
- Banerjee, S.K., Nath, S. and Banerjee, S.P. (1986a). Characteristics of the soils under different vegetations in the Tarai Region of Kurseong Forest Division, West Bengal. J. Indian Soc. Soil. Sci., 34: 343-349
- Banerjee, S.K., Nath, S. and Banerjee, S.P. (1986c). Phytosociology and soil characteristics of forests in the Eastern Himalayas. Intn. J. Trop. *Agric.*, **4**: 116-125
- Banerjee, S.K., Singh, S.B., Nath, S. and S.P. Baneriee, (1986b). Comparison of some physicochemical properties of soils of varying age plantation Cryptomeria japonica. J. Indian Soc. Soil Sci., 34: 357-361
- Berresheim, H. Wine, P.H. and Davies, D.D. (1995). Sulphur in atmosphere. In: (H.B. Singh ed.) Composition, Chemistry and Climate in the Atmosphere, Von Nostrand Rheingold.
- (1966).Clarkson, D.T. Effect of aluminium on the uptake and metabolism of phosphorus barley seedlings. Plant Physiol., **41:** 165-172
- Dickison, W.C. (2000). Integrative Plant Anatomy. Massachusetts Harcourt/ **Academic Press**

- Gabara, B., Sklodowska, M., Wyrwicka, A., Glinska, S. and Gapinska, M. (2003). Changs in ultrastructure of chloroplasts and mitochondria and antioxidant enzyme activity in *Lycopersicon esculentum* leaves sprayed with acid rain. *Plant Science*, **164:** 507-516
- Khemani, L.T. (1993). Air pollution and acid rain problems in the Indian region. *J. Radio and Space Physics*, **22:** 207-214
- Lawrence, G.B., David, M.V. and Shortle, W.C. (1995). A new mechanism for calcium loss in forest soils. *Nature*, **378**: 162-165
- Likens, G.E., Bormann, F.H. and Johnson, N.M. (1972). Acid rain. *Environment*, **14:** 33-40
- Likens, G.E., Driscoll, C.T. and Buso, D.C. (1996). Long-term effects of acid rain: Response and recovery of a forest ecosystem. *Science*, **272**: 244-246
- Likens, G.E.; Driscoll, C.T.; Buso, D.C.; Mitchell, M.J.; Lovett, G.M.; Bailey, S.W.; Siccama, T.G.; Reiners, W.A.; Alewell, C. (2002). The biogeochemistry of sulfur at Hubbard Brook . Biogeochemistry, 60(3):235. doi:10.1023/A:1020972100496.
- Likens, G. E.; Driscoll, C. T.; Buso, D. C. (1996). Long-Term Effects of Acid Rain: Response and Recovery of a Forest Ecosystem.. Science, 272 (5259):244. doi:10.1126/science.272.5259.244
- Mehta, P. (2010). Science behind acid rain: Analysis of its impact and advantage on life and heritage structure. *South Asian J. Tourism and Heritage*, **3:** 123-132

- Rodhe, H. *et al.* (2005). The global distribution of acidifying wet deposition. *Environmental Science & Technology*, **36:** 4382-4388
- Roy, A.K., Sharma, A. and Talukdar, G. (1988). Some aspects of aluminium toxicity. *The Botanical Rev.*, **54:** 145-178
- Russell, E.W. (1973). *Soil Conditions and Plant Growth*, 10th. Edition, The English Language Book Society and Longman, p. 849
- Science Daily (1998). Clean Air Act Reduces Acid Rain in Eastern United States, Sept. 28
- Seinfeld, J.H. and Pandis, S.N. (1998).

 Atmospheric Chemistry and
 Physics From Air Pollution to
 Climate Change. John Wiley ad
 Sons Inc., New York
- Silva, L.C., Azevedo, A.A., Silva, E.A.M. and Oliva, M.A. (2005a). Effect of simulated acid rain on the growth and anatomy of five Brazilian tree species. *Aust. J. Bot.*, **53:** 1-8
- Silva, L.C., Oliva, M.A., Azevedo, A.A., Araujo, J.M. and Aguiar, R. (2005b). Micromorphological and anatomical alterations caused by simulated acid rain in Restinga plants. *Water, Air and Soil Pollution*, **168:** 129-143
- Stroo, H.F. and Alexander, M. (1986). Available nitrogen and cycling in forest soils exposed to simulated acid rain. *Soil Sci. Soc. Am. J.*, **50**: 110-114
- Temple, P.J., Riechers, G.H. and Miller, P.R. (1992). Foliar injury responses of Ponderosa pine seedlings to ozone, wet and dry acidic deposition and drought. *Environmental and Experimental Botany*, **32:** 101-113

Medicine. Lippincott-Raven Publ., Philadelphia. Fourth Edition

Issue: April 2021

Weathers, K. C. and Likens, G. E. (2006).

"Acid rain", pp. 1549–1561 in: W.
N. Rom and S. Markowitz (eds.).

Environmental and Occupational

Australian bug, *Icerya purchasi* and its control measures

Issue: April 2021

N. Roychoudhury and Rajesh Kumar Mishra

Tropical Forest Research Institute

(Indian Council of Forestry Research & Education, Ministry of Environment, Forests and Climate Change, Govt. of India)

Jabalpur -482 021, Madhya Pradesh

E-mail: choudhury_nr@yahoo.com, mishrark@icfre.org

Abstract

Icerya purchasi Maskell (Hemiptera: Margarodidae) is commonly known as Australian bug or cottony cushion scale. This species is a scale insect of Australian origin, accidentally introduced into India but now widely distributed in the tropics. I. purchasi is a cosmopolitan and destructive sap sucking insect pest of Casuarina equisetifolia L. (family Casuarinaceae) in nursery stage and young plantations. This species is considered as one of the black listed invasive alien insect species. The pest profile has been described and control measures are highlighted.

Key words: Casuarina equisetifolia, sap sucker, Icerya purchasi, control measures

Introduction

Casuarinas (family Casuarinaceae) are widely planted in the tropics, subtropics and Mediterranean countries because of their ready adaptability to a variety of environmental conditions and also for their rapid growth performance. Among the 96 species of trees and shrubs (Turnbull, 1990), Casuarina equisetifolia L. has gained much attention due to its multiple end-uses. In India, C. equisetifolia was introduced from Australia in the second half of nineteenth century (Warrier et al., 2014). India is the largest planter of the Casuarina in world equisetifolia is the most widely planted species of Casuarina in the country. It is a

major tree species used for coastal afforestation programme in Tamil Nadu and Andhra Pradesh. It is salt-tolerant and grows well on sandy coastlines. It is planted widely for coastal erosion control and to act as a windbreak. The wood is hard and strong and is used for poles, scaffolding and fuel. Planted also as an ornamental, this nitrogen-fixing tree is socially well accepted in the tropics as a multipurpose tree.

Overview of insect pests

C. equisetifolia is free from major insect pest problems in its native land. However this species is encountered by several severe problems in countries where it has been introduced and India is not an exception. Browne (1968) mentioned 58 insect species belonging to the orders Coleoptera (19 species), Hemiptera (15 species), Isoptera (5 species), Lepidoptera (15 species) and Orthoptera (4 species) associated with C. equisetifolia. Studies carried out in the Casuarina growing tracts of Tamil Nadu. India have revealed that this species is infested by 40 species of insects (Sasidharan, 2004). They include 3 species of stem borers, 2 species of bark feeders, 23 species of needle feeders, 11 species of sap suckers and 1 species of seed feeder. The maximum number of insects was found to feed on needles. The insects attacking C. equisetifolia falls under 6 orders viz. Coleoptera (12 (11species), species), Hemiptera Hymenoptera (1species), Isoptera (1species), Lepidoptera (9 species) and Orthoptera (6 species). There are about 70 species of insects so far reported as pest of *C. equisetifolia* in India (Beeson, 1941; Browne, 1968; Sasidharan, 2004; Nair, 2007, Balu, 2012). Among the insect species recorded, *Icerya purchasi*, is a major pest of economic concern. The pest profile and control measures of this insect have been described.

Pest profile

Icerya purchasi Maskell (Hemiptera: Margarodidae)

Icerya purchasi (syn. Pericerya purchasi)

is commonly known as cottony cushion scale or Australian bug. A scale insect of Australian origin, accidentally introduced into India but now widely distributed in the tropics and milder parts of the temperate zones. I. purchasi is considered as one of the black listed invasive alien insect species (Anon, 2005; Roychoudhury and Sharma, 2013). The species is easily recognized by its conspicuous, fluted eggsac, which is often more than twice as long as the reddish or yellowish body of the adult (Browne, 1968). It is a functional hermaphrodite and each mated individual produce hundreds of offspring. This scale insect infests trees of almost any age and is favoured by humid conditions and shade. I. purchasi is known principally as a pest of citrus and sometimes also of other fruit trees and perennial crops such as tea and coffee. Among forest trees, it is most frequently associated with Acacia spp. and specifically recorded hosts in India include A. dealbata, A. melanoxylon, Albizia julibrissin, Cassia spp., C. equisetifolia, C. suberosa, Eucalyptus spp., Juglans regia, alba, and Pinus roxburghii Morus (Beeson, 1941; Browne, 1968). In forestry, it is injurious in nurseries, causing stunting of seedlings and transplants. Severe attack

of this pest results in die back of seedlings and complete denudation of needles on saplings.

Control measures

To control the population of *I. purchasai*, resistant source (clones/provenances) should be preferred for raising seedlings and subsequent plantations (Balu et al., 2012). The insect growth regulator Pyriproxyfen has been found to be as effective in controlling I. purchasi (Gokkes et al., 1989). Good control was achieved when applied alone or with 0.5% mineral oil (Peleg, 1989). Another growth regulator, Buprofezin, gave 100% mortality of crawlers and 31% decreased egg hatch when the adults were sprayed with it (Mendel et al., 1991). According to Senthilkumar and Murugesan (2015), foliar spray of 0.06% Dimethoate or 0.05% Methyl demeton can control the pest.

References

Anonymous (2005). Forest Invasive Species. Indian Council of Forestry Research and Education, Dehradun, 49 pp. Available at: https://apfisn.net/wp-content/uploads/2018/07/ India.pdf

Balu, A., Jayaraj, R.S.C., Thangapandian, K. and Mahalakshmi, R. (2012). Clonal variation in Casuarina equisetifolia for the attack of the scale insect Icerya purchasi Mask. (Hemiptera: Margarodidae). In: Advances in Casurina Research in India, Proceedings of the National Seminar on Casurinas (Eds. R.S.C. Jayaraj, R.R. Warrier, A. Nicodemus and N. Krishnakumar), pp. 149-154. Institute of Forest Genetics Breeding, and Tree Coimbatore, Tamil Nadu.

- Beeson, C.F.C. (1941). The Ecology and Control of Forest Insects of India and Neighbouring Countries.Repint 1993. Bishen Singh Mahendra Pal Singh, Dehradun, 1007 pp.
- Browne, F.G. (1968). Pests and Diseases of Forest Plantation Trees. Clarendon Press, Oxford, 1330 pp.
- Gokkes, M., Eshel, G. and Tadmor, U. (1989). Field trials for the control of chaff scale and Florida wax scale in citrus orchards with Tiger (pyriproxifen). Hassadeh 69: 2019
- Mendel, Z., Blumberg, D. and Ishaaya, I. (1991). Effect of buprofezin on *Icerya purchasi* and *Planococcus citri*. Phytoparasitica 19: 103-112.
- Nair, K.S.S. (2007). Tropical Forest Insect Pests: Ecology, Impact and Management. University Press, Cambridge, 404 pp.
- Peleg, B.A. (1989). Evaluation of the insect growth regulator pyriproxyfen (Tiger) as a control agent for the California red scale and the cottony-cushion scale. Alon Hanotea 43: 681-686.
- Roychoudhury, N. and Sharma, R. (2013).

 Invasive alien species with special emphasis on forest invasive species in India. In Forest Health Management (Eds. A. Balu, R.S.C. Jayaraj, A. Regupathy, V. Mohan,

- R.R. Warrier, T.P. Raghunath and N. Krishnakumar), pp. 343-353. Institute of Forest Genetics and Tree Breeding, Coimbatore, Tamil Nadu.
- Sasidharan, K.R. (2004). Studies on th insect pests of *Casuarina* equestifolia L. in Tamil Nadu and their management. Ph. D. thesis, F.R.I. Deemed University, Dehradun.
- Senthilkumar, N. and Murugesan, S. (2015).

 Insect Pests of Important Trees
 Species in South India and Their
 Management Information. Institute
 of Forest Genetics and Tree
 Breeding, Coimbatore, Tamilnadu,
 131 pp.
- Turnbull, J.W. (1990). Taxonomy and genetic variation in casuarinas. In Advances in Casuarina Research and Utilization (Eds. M.H.EL-Lakany, J.W.Turnbull, and J.L. Breybaker), pp. 1-11. Desert Development Center, Cairo, Egypt.
- Warrier, K.C.S., Singh, B.G. and Kumar, N.K. (2014). Twenty-Five Years of Research on Casuarinas at IFGBT. Institute of Forest Genetics and Tree Breeding, Coimbatore, Tamilnadu, 144 pp.

वीरांगना दुर्गावती वन्य जीव अभ्यारण्यः वानस्पतिक विविधता का केन्द्र सौरभ दुबे, डॉ. निनता बेरी, निकिता राय एवं रितिक सोनकर

उष्णक़टिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान

(भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार) ज़बलपुर (म. प्र.)

वीरांगना दुर्गावती वन्य जीव अभ्यारण्य दमोह जिले मे सिंग्रामपुर ग्राम के पास स्थित है। इस अभ्यारण्य का नाम गोंडवाना साम्राज्य की महान रानी दुर्गावती के सम्मान मे रखा गया है। पहाडियों, घाटियो व झरनो से समृद्ध यह अभ्यारण्य दमोह तथा जबलपुर शहरो को जोडने वाले मार्ग मे स्थित है तथा लगभग 24 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल मे फैला हुआ है।



इस अभ्यारण्य मे ही स्थित सिंगौरगढ़ दुर्ग अपने प्राचीन वैभव तथा गौरव गाथा को संजोये हुये शान से खडा है। इसके आस — पास अनेक ऐतिहासिक, धार्मिक व प्राकृतिक दर्शनीय स्थल है, जो कि इसकी खूबसूरती को और बढ़ाते है। अभ्यारण्य मे वन्य प्राणियो की अनेक किस्मे मौजूद है, जिसमे माँसाहारी प्राणियो में सियार, भारतीय लोमडी, तेंदुआ, लकडबग्घा आदि तथा शाकाहारी प्राणियो नीलगाय, चीतल, साँभर, चौसिंगा आदि हिरन प्रजातियो सहित भालू, जंगली शूकर, बंदर व लंगूर, पाये जाते है। यहाँ स्थित तालाबो मे मगर तथा साथ ही जंगल मे विभिन्न प्रकार के सरीसूपो को देखा जा सकता है।

इस अभ्यारण्य में पिक्षयों की लगभग 100 से अधिक किस्में दर्ज की गई हैं। विलुप्ती की कगार पर खडे गिद्द्धों के लिये भी यह अभ्यारण्य एक आदर्श व सुरक्षित ठिकाना है। अनेक प्रकार के प्रवासी पिक्षयों को यह स्थल बहुत आकर्षित करता है।



वानस्पतिक विविधताओं से अभ्यारण्य मे उष्णकटिबंधीय मिश्रित शुष्क पर्णपाती वन पाये जाते है। अनेक किस्मो के वृक्ष जिनमे प्रमुख रुप से भिर्रा (Chloroxylon swietenia), अमलतास (Cassia fistula L.), साजा (Terminalia tomentosa), बेल (Aegle marmelos (L.) Correa), पलास (Butea आदि तथा monosperma), (Anogeissus latifolia), सेमल (Bombax L.), बीजासाल (Pterocarpus marsupium Roxburgh), कैथा (Limonia acidissima), कसई (Bridelia retusa), करधई (Anogeissus pendula, Edgew), चिरोंजी (Buchanania lanzan), जाम्न (Syzygium cumini) आदि पाये जाते है। अनेक जल धाराओ

के समानान्तर अर्जुन (Terminalia arjuna) के वृक्षो की श्रृंखला यहाँ देखने मिलती है। अभ्यारण्य तथा निकटवर्ती भागो मे सागौन (Tectona grandis) मिश्रित वन भी मिलते है। देशी बाँस की उपस्थिती भी इन जंगलो मे देखी जा सकती है।



विभिन्न वृक्ष प्रजातियों के अलावा इस अभ्यारण्य मे लेंडिया वृक्ष जिसका वानस्पतिक नाम Lagerstroemia parviflora Roxb. है, मुख्य रुप से पाया जाता है। बुन्देलखन्ड के मिश्रित पर्णपाती वनो मे सामान्य रुप से पाया जाने वाले यह वृक्ष इस अभ्यारण्य के वन क्षेत्र मे भी सर्वत्र दिखाई देते है। इसकी छाल भूरे रंग तथा पतली पपडियो युक्त होती है तथा पुष्पन अप्रैल से जून माह तक होता है। शाखाओं के अंत में छोटे सफेद फूल आते हैं। इसकी लकडी का प्रयोग बहुत सी कृषि कार्य संबंधी सामग्रियो के निर्माण मे किया जाता है। अभ्यारण्य मे लेंडिया वृक्षो की अधिकता के साथ - साथ बेल के वृक्षो की बहुतायत भी यहाँ मिलती है। बेल वानस्पतिक नाम Aegle marmelos (L.) Correa है, यह रुटेसी (Rutaceae) कुल का सदस्य है। बेल भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण पूर्व एशिया के मूल निवासी पेड़ की प्रजाती है। इसके वृक्ष मध्य भारत के वनो मे आसानी से देखे जा सकते है।बेल इस अभ्यारण्य मे मिलने वाली प्रमुख वृक्ष प्रजाती मे से एक है। किला की ओर

जाने वाले मार्ग पर व आस – पास के पहाडी क्षेत्र मे बहुतायत मे बेल के वृक्ष मिलते हैं। छोटे हल्के हरे – पीले फूल नयी पत्तियों के आगमन के साथ ही आते है तथा फूलों की मधुर सुगंध से सारा वन महक उठता है। फल कच्चे होने पर हल्के हरे रंग के तथा पकने पर हरे से सुनहरे पीले रंग का हो जाते हैं।

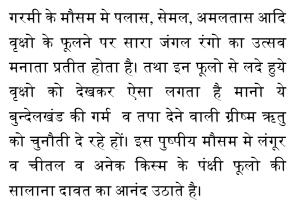
सिंगौरगढ़ दुर्ग से लगे हुये प्राचीरो के भग्नावेशो पर पत्थरों के बीच पापडा (Gardenia latifolia) जैसे वृक्षों को हम जडे जमाये देख सकते है। पहाडियों के शिखरों तथा ढ़लानो पर कुल्लू (Sterculia urens) तथा हल्दू (Haldina cordifolia) वृक्ष प्रजातियाँ पायी जाती है। कुसुम (Schleichera oleosa), आँवला (Phyllanthus emblica), तेंदु (Diospyros melanoxylon



Roxb.), गूलर (Ficus racemosa) तथा महुआ (Madhuca longifolia) जैसे फलदार वृक्ष वन्य जीवो को बहुत आकर्षित करते है। फलो के मौसम में हम बंदरों, लंगूरों तथा अनेक किस्म के फल खाने वाले पिक्षयों को आसानी से इन वृक्षों पर देख सकते है। महुआ फूलों के पुष्पन व गूलर के फलने के समय चीतल हिरणों व शूकरों को इन वृक्षों के नीचे रसीले फूलों व फलों को खाते देखा जा सकता है। भैंसाघाट तथा आस – पास के जंगल मकोर व बेर जैसी फलदार वनस्पतियों से समृद्ध है।







अभ्यारण्य की पुष्पीय वृक्ष प्रजातियों मे से एक अमलतास वृक्ष जिसका वानस्पतिक नाम Cassia fistula L. है, अपने पुष्पन के समय देखने में बहुत आकर्षक दिखाई देता है। यह फेबेसी (fabaceae) कुल का सदस्य है। सूखे इलाको में आसानी से बढ़त लेने वाला यह मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है। इसके चटक पीले रंग वाले फूल गुच्छो के रुप में आते है तथा फूलो से भरा वृक्ष सुंदर गुलदस्ते जैसा प्रतीत होता है। पराग लेने के लिये मधुमिक्खियाँ इनके फूलो पर महराती रहती है। फूलो के उपरांत बीज लम्बे - बेलनाकार काष्टीय फिल्लयो में आते है।

अनेक प्रकार की झाडीदार वनस्पतियाँ जिनमे झरबेर (Zizyphus rotundifolia), निर्गुंडी (Vitex negundo), लेंटाना (Lantana camara L.), मातीशूल (Leonitis nepetaefolia (L.) R. Br.), बडी लटकन (Xanthium strumarium L.) आदि तथा सामान्य व औषधीय महत्व की



जैसे बबची (Psoralea corylifolia), बला (Sida cordifolia), अतिबला (Abutilon indicum), छोटी दुधी (Euphorbia microphylla Heyne ex Roth.), बडी दुधी (Euphorbia hirta L.), जंगली अकरकरा (Spilanthes calva DC.), कटसरैय्या (Barleria prionitis L.), अपामार्ग (Achyranthes aspera L.) अनंतमूल (Hemidesmus indicus (L.) R. Br.), शंखपुष्पी (Evolvulus alsinoides L.), पुनर्नवा (Boerhavia diffusa L.), मकोय सियारकाँटा (Solanum L.), nigrum mexicana बाघनखी L.), (Argemone (Martynia annua L.) आदि भी बहुतायत मे यहाँ पायी जाती है। जल स्त्रोत के आस – पास व जल भराव वाले स्थानो पर नागरमोंथा पाया जाता है।

औषधीय महत्तव की वनस्पित के रुप में अपामार्ग यहाँ बहुतायत में पाया जाता है। संस्कृत में अपामार्ग कही जाने वाली इस वनस्पित को विभिन्न स्थानीय नामों जैसे चिरचिटा या चिरचिरा, लठजीरा आदि से नामों से जाना जाता है। इसका वानस्पितक नाम Achyranthes aspera L. है। इसके फूल लम्बे दण्ड पर आते है, जो कि गहरी गुलाबी - हरी रंगत लिये हुये होते है तथा बीज प्रसारण के लिये आसानी से जानवरों

की त्वचा व बालो से चिपक जाता है। इसके पंचांग का प्रयोग आयुर्वेद मे किया जाता है।

वर्षा के मौसम में जंगल की फर्श हरियाली की चादर से ढ़क जाती है तथा अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ सर्वत्र नजर आने लगती है और सारा जंगल हरा – भरा दिखने लगता है। मानसून के समय, रसभरी (Physalis minima L.), लजालू (Biophytum sensitivum(L) दुधी (Euphorbia geniculata), भूमि आँमला (Phyllanthus urinaria L.) आदि वनस्पतियाँ सामान्य रुप से दिखाई देने लगती है।

अभ्यारण्य मे विभिन्न प्रकार की काष्टीय व शाकीय लताये भी मिलती है। अधिकांश शाकीय लताये वार्षिक होती है, जिनमे केवाँच (Mucuna pruriens), बैचाँदी (Dioscorea hispida) वराहीकंद (Dioscorea bulbifera), कलिहारी (Gloriosa superba), मॉर्निग ग्लोरी (Ivy leaf morning glory, Red star, Tiger foot morning glory), शिवलिंगी (Diplocyclos palmatus (L.) C. Jeffrey) व जंगली अंगूर आदि प्रमुख है। वर्षभर मिलने वाली लताओं मे गुडमार (Gymnema sylvestre), मालकाँगनी calyculata), (Ventilago (Celastrus paniculatus), गिलोय (Tinospora cordifolia) आदि है।

उष्णकटिबंधीय जंगलो से समृद्ध यह अभ्यारण्य वर्षा के मौसम मे कलिहारी के सुंदर फूलो से सुशोभित होता है।



कलिहारी एक बहुवर्षीय लता है। जिसका वानस्पतिक नाम Gloriosa superba है तथा यह कोल्चिकेसी (Colchicaceae) परिवार की सदस्य है। इसके सुंदर लाल - नारंगी - पीला रंग लिये हुये 6 पन्खुडियो से युक्त फूल जंगल की शोभा को बढ़ा देते है। चटक रंगो से युक्त इसके फूल देखने मे आग की लौ की तरह प्रतीत होते है, जिसके कारण ही इसे संस्कृत मे अग्निशिखा, अग्निम्खी तथा अंग्रेजी मे फ्लेम लिली या फायर लिली आदि नामो से जाना जाता है। इसकी जड माँसल प्रकंद के रुप मे होती है, जिसका प्रयोग आयुर्वेद मे विभिन्न बीमारियो के उपचार मे किया जाता है। वक्षो. झाडियों व लताओं के अलावा यहाँ विभिन्न प्रकार की मौसमी तथा वर्षभर रहने वाली घास प्रजातियों भी उपलब्ध है, जिनमे प्रमुख रुप से दूब (Cynodon daetylon, Pers.), गुन्हेर Themeda quadrivalvis, O. Kuntz.), काँस (Saccharum spontaneum, Linn), भ्रभ्सी (Eragrostis tenella, Link.), बास्केट घास (Oplismenus Sp.) आदि तथा विभिन्न प्रकार के मोंथा घास, से यह अभ्यारण्य वर्षभर समृद्ध रहता है, जो कि चराई करने वाले वन्य प्राणियो को भोजन की आवश्यक्ता को पुरा करता है।

अन्त मे यह कहना अतिश्योक्ति नही है कि वन्यजीव एवं विभिन्न वनस्पतियों से युक्त यह अभ्यारण्य वन सम्पदा के संरक्षण मे अप्रत्याशित योगदान दे रहा है। जरुरत इस बात कि है कि हम भी इस बहुमूल्य वन सम्पदा को संरक्षित करने मे अपना योगदान अवश्य दें।

References

https://en.wikipedia.org/wiki/Veerangana_ Durgavati_Wildlife_Sanctuary https://www.google.com/search?q=cassia+ fistula+flower&source=lnms&tbm =isch&sa=X&ved=2ahUKEwjF78 b3nubvAhV_zjgGHUADBqIQ_A UoAXoECAIQAw#imgrc=8N0BK VB4JbCFPM

wiLv9ezoObvAhXQXCsKHdgCD KMQ_AUoAXoECAEQAw#imgr c=omHS07uPgytJFM

Issue: April 2021

https://www.google.com/search?q=glorios a+superba+flowers&source=lnms &tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKE



Published by:



Tropical Forest Research Institute (Indian Council of Forestry Research & Education)

(An autonomous council under Ministry of Environmnet, Forests and Climate Change)

P.O. RFRC, Mandla Road Jabalpur – 482021, M.P. India

Phone: 91-761-2840484 Fax: 91-761-2840484

E-mail: vansangyan_tfri@icfre.org, vansangyan@gmail.com

Visit us at: http://tfri.icfre.org or http://tfri.icfre.org